ॐ

देवता-परिचय-ग्रंथ-माला ।

तृतीय-ग्रंथः ।

ऋग्वेद में रुद्रदेवता ।

लेखक और प्रकाशक ।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय-मंडल. औंध (जि. सातारा,)

प्रथमवार २०००

विक्रम संवत् १९७६, शालीवाहन शक १८४२

ईसवी सन १९२०

मूल्य १० आना ।

ऋग्वेद में रुद्रदेवता।

लेखक और प्रकाशक।

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि. सातारा,)

प्रथमवार २०००

विक्रम संवत १९७६, शालीवाहन शक १८४१,

ईसवी सन १९२०

प्रकाशक—श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,
(स्वाध्याय मंडलके लिये)
(औंध, जि० सातारा.)

मुद्रक—रामचंद्र येसु शेडगे, 'निर्णयसागर' छापखाना,
२३ कोलभाट गल्ली, मुंबई.

पाठकों से विशेष प्रार्थना।

'रुद्र देवताका परिचय' नामक पुस्तक स्वतंत्र रीतीसे प्रसिद्ध हो चुका है। उस पुस्तकमें **'रुद्र'** के सामान्य स्वरूपका वर्णन विविध प्रमाणोंद्वारा किया है। इस "ऋग्वेदमें रुद्र देवता" नामक पुस्तक को पढनेसे पूर्व पाठक 'रुद्र देवताका परिचय' नामक पुस्तक अवश्य पढें, अर्थात् रुद्रके मूल स्वरूपके साथ अच्छीप्रकार परिचय होनेके बाद ही इस पुस्तकको पढें। अन्यथा इस पुस्तक के सूक्तों के विवरण का बोध होना कठीन होगा, इतनाही नहीं, परंतु कई स्थानोंपर बडा संदेह भी हो सकता है।

जिन बातोंका स्पष्टीकरण 'रुद्र देवताके परिचय' में किया है, उन बातोंको अत्यंत सारांश रूपसेही इस पुस्तकमें रखा है। और इस पुस्तकमें अत्यंत आवश्यक शब्दोंपरही टिप्पणियां दीं हैं; इसलिये जबतक पूर्वोक्त पुस्तक के साथ इस पुस्तकको न पढा जाय, तब तक मंत्रके संपूर्ण गूढ तत्वका विचार नहीं होगा।

वैदिक वाङ्मय में रुद्र देवता।

वैदिक वाङ्मयमें **'रुद्र'** देवताके मंत्र थोडे होनेसे रुद्र देवताका परिज्ञान प्राप्त करना, अन्य देवताओंके परिज्ञान की अपेक्षा सुगम है। चारों वेदोंमें रुद्र देवताके सूक्त तथा मंत्र हैं। ऋग्वेदमें जो जो सूक्त आते हैं उनका संग्रह इस पुस्तकमें किया है। इन सूक्तोंसे भिन्न ऋग्वेदमें स्वतंत्र रुद्रसूक्त नहीं हैं। मरुत, इन्द्र, अग्नि, तथा अश्विनौ आदि देवताओंके सूक्तोंमें 'रुद्र' का संबंध आगया है। कई स्थानपर 'रुद्र' शब्द विशेषणरूपमें आगया है। भयानक, डरावनेवाला, इत्यादि अर्थ इस शब्दके द्वारा वहां प्रकट होते हैं। मरुतआदि सूक्तोंमें जो रुद्रका वर्णन आया है, उनमेंसे विशेष मंत्रोंका स्पष्टीकरण 'रुद्र-परिचय' पुस्तक में किया है। तथा शेष मंत्रोंका विवरण यजु० अ० १६ की व्याख्याके प्रसंगमें हो जायगा। इसलिये यहां उन मंत्रोंके विषयमें कुछभी नहीं लिखा। रुद्रदेवताके विषयमें निम्न पुस्तक प्रसिद्ध होने हैं—

(१) रुद्र देवताका परिचय,
(२) ऋग्वेदमें रुद्र देवता,
(३) यजुर्वेदमें रुद्र देवता,
(४) अथर्ववेदमें रुद्र देवता,
(५) ब्राह्मणग्रंथोंमें रुद्र देवता,
(६) पुराणोंमें रुद्र देवता।

इन ग्रंथोंमें से पहिला ग्रंथ छप चुका है, दूसरा ग्रंथ यहहि है, इसके पश्चात् क्रमशः अन्य ग्रंथ प्रकाशित होंगे। जिनके पढनेसे रुद्र देवाताका विज्ञान स्वयं ज्ञात हो सकता है।

अन्य देवताओंके विषयमें भी इसीप्रकार ग्रंथ प्रकाशित करनेका विचार है। परंतु यह कार्य इतना विस्तृत है कि, बहुतोंकी सहायता के विना होना सर्वथा असंभव है।

इस पुस्तकमें निम्न सूक्तोंका विचार किया है:—

सूक्त	मंत्र संख्या
ऋ. १।४३	९
ऋ. १।११४	११
ऋ. २।३३	१५
ऋ. ७।४६	४

अर्थात् कुल मंत्र संख्या ३९ है जिनका विचार इस पुस्तकमें हुआ है। इन सूक्तोंका छंद ऋषी निम्नप्रकार है—

सूक्त	ऋषि	देवता	छंद
ऋ. १।४३	कण्वः	रुद्रः	गायत्री, अनुष्टुप्
ऋ. १।११४	कुत्सः	”	जगती, त्रिष्टुप्
ऋ. २।३३	गृत्समदः	”	” ”
ऋ. ७।४६	[illegible]	”	” ”

इनके अतिरिक्त निम्न मंत्र देखने योग्य हैं। इनमेंसे कई मंत्र 'रुद्र-परिचय' में आचुके हैं और शेष अन्य स्थान पर आ जायगें—

ऋग्वेदमें सूक्त	ऋषि	देवता	छंद
१।२७।१०	शुनःशेपः	इन्द्रः, विश्वेदेवाः	गायत्री
१।६४।२,३,१२	नोधाः	मरुतः	जगती
१।८५।१	गोतमः	”	”
१।१२२।१	कक्षीवान्	विश्वेदेवाः	त्रिष्टुप्
१।१२९।३	परुच्छेपः	इन्द्रः, इन्दुः	अत्यष्टिः
२।१।६	गृत्समदः	अग्निः	जगती
२।३४।२	”	मरुतः	”
२।३८।९	”	सविता	त्रिष्टुप्.
३।२।५	विश्वामित्रः	वैश्वानरः	जगती
४।३।१	वामदेवः	अग्निः	त्रिष्टुप्
५।३।३	वसुश्रुतः	अग्निः, मरुतः, रुद्रः, विष्णुः	”
५।४१।२	अत्रिः भौमः	विश्वेदेवाः	”
५।४२।११,१५	”	”, रुद्रः	”
५।४६।२	प्रतिक्षत्रः	”	जगती
५।५१।१३	स्वष्टिः	”	”
५।५२।१६	श्यावाश्वः	मरुतः	पंक्तिः
५।५९।८	”	”	त्रिष्टुप्
५।६०।५	”	”	”
६।१६।३९	वीतहव्यः भरद्वाजो वा	अग्निः	गायत्री
६।२८।७	” ”	गावः	त्रिष्टुप्
६।४९।१०	ऋजिश्वा	विश्वेदेवाः	”
६।५०।४	”	”	”
६।६६।३	भारद्वाजः	मरुतः	”
६।७४।१-४	”	सोमारुद्राः	”
७।१०।४	वसिष्ठो मैत्रावरुणिः	अग्निः	”

७।३५।६	”	विश्वेदेवाः	”
७।३६।५	”	”	”
७।४०।५	”	”	”
७।४१।१	”	”	जगती
७।५६।१	”	मरुतः	विराट्
७।५८।५	”	”	त्रिष्टुप्
८।१३।२०	नारदः	इन्द्रः	उष्णिग्
८।२०।१७	सोभरिः	मरुतः	बृहती
८।२२।१३	”	अश्विनौ	”
८।२९।५	मनुः काश्यपो वा	विश्वेदेवाः	विराड्
८।६१।३	हर्यतः	अग्निः	गायत्री
१०।६४।८	गयः	विश्वेदेवाः	जगती
१०।६५।१	वसुकर्णः	”	”
१०।६६।३	”	”	”
१०।९२।५,९	शर्यातः	”	”
१०।९३।४,७	तान्वः	”	पंक्तिः
१०।१२५।१,६	आंभृणी वाक्	आंभृणी वाक्	त्रिष्टुप्
१०।१२६।५	कुल्मलबर्हिषो अंहोमुग् वा	विश्वेदेवाः	बृहती
१०।१३६।१–७	मुनयो-वातरशनाः— जूतिः; वातजूतिः विप्रजूतिः, वृषाणकः करिक्रतः, एतशः ऋष्यशृङ्गः	केशिनः	अनुष्टुप्
१०।१६९।१	शबरः	गावः	त्रिष्टुप्

उक्त कोष्टक से पता लग सकता है कि, कितने देवताओंके साथ वेदमें 'रुद्र' का संबंध है तथा कितने देवताओंका विशेषण 'रुद्र' माना गया है। जहां अन्य देवताओंके सूक्तोंमें रुद्र शब्द आगया है, वहां वह 'रुद्र' शब्द उस देवताका गुण बताता है, जैसाः—

रुद्रो अग्निः= { भयानक अग्नि
ज्ञानदाता अग्नि.

रुद्रा मरुतः= { रुद्र पुत्र मरुत
रोगनिवारक वायु

रुद्र इन्द्रः= { शूर इन्द्र
शत्रुनिवारक प्रभु

इत्यादि प्रकारसे यह एकहि शब्द भिन्नभिन्न देवताओंके प्रकरणमें विविध गुणोंका प्रकाश करता है। अर्थात् वेदमें 'रुद्र' शब्द विशेषण और विशेष्य, दोनों प्रकारसे आगया है। उक्त सूक्तोंमें भिन्नभिन्न देकताओंके मंत्रोंमें 'रुद्र' पद आया है, उसका तात्पर्य बहुतहि गंभीर है। उन सूक्तों का विचार करने के समय उस उस स्थान के रुद्र पदका महत्व बाताया जा सकता है। परंतु यहां सारांशरूपसे थोडासा भाव बताता हूं—

(१) **वाक्**-(आंभृणी वाक्)—देवता के मंत्रमें 'रुद्र' पद आगया है। इससे स्पष्ट है कि 'रुद्र' का संबंध वाणीसे है। (रुत्)वाणीका, शब्दोंका (रा) दान करनेवाला अर्थात् उपदेशक, अध्यापक, व्याख्याता, आदि भाव प्राज्ञवर्ग के रुद्रवाचक शब्दोंमें देखीए।

(२) **विश्वे देवाः**-(विश्वे) सब (देवाः) विद्वान। देवशब्दसे इंद्रिय, विद्वान् तथा सूर्यादि देवताओंका बोध होता है। इंद्रियोंमें वाक् आदि इंद्रिय, शरीरमें दश प्राण और आत्मा, विद्वानोंमें ज्ञानी, वैद्य, शूर आदि मनुष्य, तथा बाह्य देवताओंमें अग्नि, विद्युत्, वायु आदि पदार्थ रुद्रशब्दसे जाने जाते हैं। इस प्रकार 'विश्वेदेवाः' अर्थात् संपूर्ण देवोंमें रुद्रका संबंध पहुंचता है।

(३) **अग्नि, वैश्वानर, केशिन्**-आदि देवताओंमें पूर्वोक्त प्रकारसेहि रुद्रका संबंध आताहि है।

(४) **मरुतः**—मरुतोंके साथ रुद्रका पितापुत्र का संबंध है।

(५) **इन्द्र**-विद्युतका रुद्रके साथ संबंध होनेसे इस देवतका संबंध स्वयं सिद्ध है क्योंकि विद्युत्से इंद्रका संबंध स्पष्ट है।

(६) **इंदुः—चंद्र, सोम** आदिसे रुद्रका इसप्रकार संबंध है कि, 'सोम' औषधियोंका राजा है और रुद्र स्वयं 'वैद्य' ही है। 'इंदु, चंद्र, सोम' ये पर्याय शब्द हैं।

(७) **गावः**—गायके साथ रुद्रका संबंध, रुद्र वैद्य होनेके कारण है। वैद्य जिसप्रकार औषधियां बरतता है उसप्रकार गायका दूध, घी आदि विशेषतया उपयोगमें लाता है।

(८) **विष्णुः**—सर्वव्यापक ईश्वरका नाम विष्णु है। रुद्र की सर्व व्यापकता बतानेके लिये उसका विष्णुसूक्तमें संबंध लगाया है।

इस प्रकार पाठक जान सकते हैं, कि अन्य देवताओंके साथ रुद्रका संबंध विशेष कारणसेही आगया है। व्यर्थ नहीं है। 'रुद्र-परिचय' नामक पुस्तक में जो रुद्रके विविध भाव दिये हैं, उनका संबंध इन देवताओंके सूक्तोंमें रुद्र शब्दके प्रयोगके साथ अत्यंत घनिष्ट है। देखीए निम्न कोष्टक—

देवता।	रुद्रका भाव।
(१) **वाक्**	वक्ता, ज्ञानी रुद्र। उपदेशक।
(२) **इंदुः** (सोमः) ...	रोगनिवारक रुद्र। वैद्य, चिकित्सक।
(३) **गावः**	गोपाल वैश्य रुद्र। पशुपालक। पशुपति।
(४) **इन्द्रः**	शत्रुनिवारक रुद्र। शूर।
(५) **विष्णुः**	व्यापक रुद्र। परमात्मा।
(६) **मरुतः**	मर्त्य अनंत रुद्र। प्राणिमात्र (प्राणवायु)
(७) **अग्नि**	तैजस रुद्र। तैजसपदार्थ।

इससे स्पष्ट है, कि रुद्र शब्दकीं भिन्न व्युत्पत्तियां और उस शब्दके भिन्न अर्थ किसकारण होगये हैं, और किस कारण होने आवश्यक हैं। जो पाठक 'रुद्र-परिचय' नामक पुस्तकमें रुद्रके विविध भाव देख कर संदेह करते होंगे, उनको यहां अवश्य देखना चाहिए कि, उनके संदेह की निवृत्ति इस भिन्न देवताओंके प्रकरणके विचारसे होगई है। जो बात वहां केवल धात्वर्थके बलसे बतायी थी, वह ही बात यहां देवताओंके साहचर्यके प्रमाणसे स्वयं ही सिद्ध होगई है। अर्थात् जो अनुमान 'रुद्र-परिचय' पुस्तकमें 'रुद्र'के यौगिक अर्थके द्वारा किया था, उसकी सिद्धि करनेके लिये इस लेखमें देवताओंने

आकर स्वयं साक्षी दी है। अस्तु। वेदकी लेखनशैलीमें जो विलक्षण अपूर्वता है, उसका थोडासा प्रकाश इस बातसे यहां हो सकता है। इस लिये ऋषीमुनी इस समय तक कहते आये हैं कि वेदके मंत्रोंकी बातें 'मनन' करनेसेहि ज्ञात हो सकतीं है, अन्यथा नहीं। जो लोक मननके बिना तथा आंतरिक संगति लगानेके विना ही मंत्रोंके शब्दार्थको देखते हैं उनके पल्लेमें कुछभी नहीं आ सकता; इसलिये पाठकोंसे निवेदन है कि, वे शांतिके साथ वेदमंत्रोंका मनन और आंदोलन करते रहें। यदि किसी मंत्रका भाव आज ध्यानमें नहीं आया, तो थोडे कालके पश्चात् अवश्य समझमें आजायगा। इसका विश्वास रखीए।

'रुद्र-परिचय' ग्रंथमें 'रुद्र' के जो जो भाव बताये हैं, उन सबका संबंध पूर्वोक्त देवताओंके साथ पाठक अवश्य देखें, जिससे 'रुद्र' के सच्चे स्वरूपका पूर्ण ज्ञान होनेमें अपूर्व सहायता मिल सकती है।

'छंद' के विषयमें यहां एक बात अवश्य बातानी है। 'रुद्र' का वर्णन अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् और जगती छंदमें हुआ है। इन तीनों छंदोंका संबंध निम्न प्रकार है—

छंद	देवता	स्थान	पादमें अक्षर	देव	सवन
अनुष्टुप्	अग्नि	पृथिवी	८	अष्टवसु	प्रातःसवन
त्रिष्टुप्	विद्युत्	अंतरिक्ष	११	एकादशरुद्र	माध्यंदिनसवन
जगती	सूर्य	द्युलोक	१२	द्वादशआदित्य	तृतीय सवन

'रुद्र' का रहना तीनों स्थानोंमें होनेसे तीनों स्थानोंके छंदोंद्वारा उसका वर्णन किया है। यद्यपि एकादश रुद्रोंका मुख्य मध्यस्थान होनेसे वहां उनका स्थान माना जाता है, तथापि अन्यत्र उसका वास्तव्य है, यह बात 'रुद्र-परिचय'में सप्रमाण बता दी है। और इसीलिये अन्य छंदोंमेंभी उसका वर्णन किया है। इससे पाठकोंको पता लग जायगा कि, देवताओंके वर्णनके लिये जो छंदोंकी योजना की गई है, उसमें भी विशेष हेतु है। हरएक देवताके लिये विशेष हेतुके कारण खास खासही छंद निश्चित हैं। उनही छंदोंमें उस उस देवता का वर्णन होता है, किसी अन्य छंदमें नहीं होता। विशेषकर मंत्रोंके पादके अक्षरोंकी संख्या के साथ देवताका विशेष संबंध है। इस बातका पूर्ण विचार किसी अन्य स्थानपर किया जायगा। यहां सूचना मात्र लिखा है। जिससे

पाठक स्वयं भी सोच सकते हैं और जान सकते हैं, कि वेदका अध्ययन दूसरे साधारण ग्रंथके अध्ययनके समान अथवा उपन्यास पढाईके समान नहीं किया जा सकता। वेदमें प्रत्येक बात विशेष हेतुसे रखी प्रतीत हो रही है। आशा है कि पाठक अधिक विचारपूर्वक निरीक्षण करके निश्चय करेंगें।

इस पुस्तकमें ऋग्वेदीय रुद्र-देवताके केवल चार सूक्त दिये हैं। रुद्रके 'वैद्य' रूपका वर्णन पहिले दो सूक्तोंमें मुख्य है । अन्य सूक्तोंमें वैद्यरूपके साथ शूरत्वका भी वर्णन है । इन सूक्तों के आधारसे हि रुद्रका वैद्य, राजवैद्य, वैद्यराज आदि भाव समझा जाता है । वेदके मंत्रोंमें जो वर्णनकी विशेषता है, उसका अनुभव पाठक इन सूक्तोंमें कर सकते हैं। प्रत्येक सद्गुणकी पराकाष्ठा परमेश्वरमें है यह आशय वेदमें सर्वत्र है। वैदिक धर्मका यह मुख्यतत्त्व है, कि जो जो सद्गुण जगतमें देखा जाता है, उसीकी पराकाष्ठाका भाव परमात्मामें आंतरिक दृष्टीसे देखना। वैद्यमें रोगनिवृत्ति करना और क्लेश दूर करना ये दो गुण हैं । परमात्मामें इनकी पराकाष्ठा बताना वेदको अभीष्ट है । इसलिये पाठक वैद्यका वर्णन होतेहि, उनही गुणोंके साथ परमात्माका वर्णन इन सूक्तोंमें देखेंगे। जगतमें जो सद्गुण अल्प अंशसे दिखाई देता है उसीको परमात्मामें परिपूर्णतासे बतलाया है। इस रीतीसे सर्वत्र परमात्माकी जागृतिका अनुभव प्राप्त होता है। इतनाही नहीं परंतु प्रत्येक सद्गुणका संबंध परमात्माके साथ होनेका विश्वास उपासकके मनमें उत्पन्न होता है ।

पदार्थके साथ प्रेम रखना उचित नहीं परंतु सद्गुणके साथ प्रेम रखना चाहिए, यहभी उपदेश यहां प्राप्त हो सकता है। क्योंकि वैदिक देवताएं गुणरूप हैं। मनुष्योंमें सद्गुणके साथ प्रेम और दुर्गुणके साथ अप्रीति उत्पन्न करना धर्मका आवश्यक कर्तव्य है। किसी व्यक्तिका द्वेष नहीं होना चाहिए, परंतु दोषोंके साथ घृणा होनी चाहिए। यह भाव वैदिक धर्मसे प्राप्त हो सकता है, क्योंकि यहां सब देवताएं गुणरूपहि हैं। इसलिये वेदका स्वाध्याय करनेसे सद्गुणोंके साथ प्रेम स्वयं उत्पन्न होता है। आशा है कि पाठक गुणग्राहकताकी दृष्टीसे स्वाध्याय करेंगे और आगामी स्वाध्यायशील पुरुषोंका मार्ग सुगम करेंगे।

औंध (जि. सातारा) १।२।२० } **श्रीपाद दामोदर सातवळेकर**
स्वाध्याय मंडल.

ऋग्वेदमें रुद्रदेवता।

(१) रुद्र-सूक्त।

[ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ४३ ॥ ऋषिः—कण्वो घौरः ॥ देवता—रुद्रः]

कद्रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे ॥
वोचेम शंतमं हृदे ॥ १ ॥
यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे ॥
यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥

अर्थ—(प्र-चेतसे) विशेष ज्ञानी, (मीळ्हुष्टमाय) दानशील, (तव्यसे) शक्तिमान और (हृदे) हृदयंगम (रुद्राय[1]) वैद्यके विषयमें हम सब (कत्) कब (शं-तमं) शांतियुक्त (वोचेम) भाषण करें।

भावार्थ—विशेष विद्वान उदार अर्थात् परोपकारी शक्तिमान और विचारी वैद्यकीही सदा प्रशंसा करना योग्य है।

अर्थ—(यथा ३) जिस प्रकार (अदितिः[2]) भोजनकी रीति (नः) हम सबके (पश्वे) पशु, (नृभ्यः) मनुष्य, (गवे) गाय, (तोकाय) बालक आदि सबके लिये (रुद्रियं[3]) औषध (करत्) करती है।

भावार्थ—खानपानकी योग्य रीतीसे सब प्राणियोंके रोग दूर होते हैं।

(१) रुद्रः—रुद् रोगः। तं द्राति गमयति नाशयति इति रुद्रः वैद्यः। रोग दूर करता है इसलिये वैद्यको रुद्र कहते हैं। (२) अदितिः—अदनं। अत्तीति तददितेरदितित्वं। बृ. आर. उप.। अदनाददितिः। योग्य रीतीसे भक्षण करना। (३) रुद्रियं—रुद्रसंबंधी भेषजं इति सायणाचार्यः। औषध, दवाई।

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति ॥
यथा विश्वे सजोषसः ॥ ३ ॥
गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् ॥
तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥
यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते ॥
श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ ॥

अर्थ—(यथा१) जिस प्रकार (मित्रः) मित्र (वरुणः) वरिष्ठ और (रुद्रः) वैद्य (नः) हम सबकी (चिकेतति) परीक्षा करता है, उस प्रकार (विश्वे) सब (स-जोषसः) प्रीतीसे सेवा करनेवाले करें।

भावार्थ—जिस प्रकार हित करनेवाला, श्रेष्ठ, और वैद्य चिकित्सा करता है, उस प्रकार प्रीतिसे सेवा करनेवाले सब सेवक अपना कार्य करें।

अर्थ—(गाथ-पतिं) शोधकोंका मुख्य, (मेध२-पतिं) रसोंका स्वामी (जलाष३-भेषजं) जल-चिकित्सक और (४शं-योः) अंतर्बाह्य (तत् सुम्नं) शांति देनेवाले (रुद्रं) वैद्यको हम सब (ईमहे) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—उत्तम शोधक और योजक, विविध अर्कों और सत्वोंको पास रखनेवाले, तथा बाह्य शरीरका और आंतरिक मन आदिका स्वास्थ्य देनेवाले जलचिकित्सक वैद्यके पास सब लोक जावें।

अर्थ—(यः) जो (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ (शुक्रः५) वीर्यवान् और (दे६वानां वसुः)

---

(१) **जुष्—प्रीतिसेवनयोः।** प्रीतिसे सेवा करनेके भावको **'जोषस्'** कहते हैं। यह भाव जिन लोकोंमें होता है उनको **'स-जोषस्'** कहा जाता है। (२) **मेध**—Essence अर्क, सत्व, क्षार, कषाय। (३) **जलाषभेषजं—उदक-रूपौषधोपेतं इति सायणाचार्यः।** जलरूप औषध देनेवाला। (४) **शं**—Internal peace आंतरिक शांति। **योः**—External peace बाह्य शांति। **शं-योः**—मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य। (५) **शुक्रं**—वीर्य। जो उत्तम ब्रह्मचर्य धारण करके ऊर्ध्वरेता बन जाता है उसको भी शुक्र कहते हैं। (२) **देव**—इंद्रिय, विद्वान और सूर्यचंद्रादि पदार्थ। यहां इंद्रिय अर्थ अभीष्ट है।

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये ॥
नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥

अस्मे सोम श्रियमधि निधेहि शतस्य नृणाम् ॥
महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥

इंद्रियोंका निवासक है, वह हि (सूर्यः इव) सूर्यके समान तथा (हिरण्यं इव) सुवर्णके समान (रोचते) प्रकाशता है ।

भावार्थ—जो श्रेष्ठ सदाचारी, वीर्यकी धारणा करनेवाला, और अपने इंद्रियोंको ठीक रखनेवाला होता है, वह हि तेजस्वी होता है ।

अर्थ—(नः) हम सबके (अर्वते) घोडेके लिये (शं) कल्याण (करति) करता है । तथा (नृभ्यः नारिभ्यः) पुरुष और स्त्रियोंके लिये (मेषाय मेष्ये) बकरा और बकरी के लिये और (गवे) गाय के लिये (सुं-गं)[1] सुख देता है ।

भावार्थ—पूर्व मंत्रोक्त गुण सबका आरोग्य सुरक्षित रखते हैं ।

अर्थ—हे (सोम[2]) वनस्पति । (नृणां शतस्य श्रियं) सेकडों मनुष्योंकी शोभा, (तुवि-नृ-म्णं) बलिष्ठ मानवी मन और (महि श्रवः[3]) महान यश (अस्मे) हम सबमें (अधि-नि-धेहि) स्थापित करो ।

भावार्थ—वनस्पतिके सेवनसे सर्वसाधारण मानवी सौंदर्य, उत्साही मन और महान यश प्राप्त होता है ।

(१) सुगं=सु+गं=सुष्ठु+गमनं—सब अवयवोंकी उत्तम गति होनेकी स्वास्थ्यकी अवस्था । जिस अवस्थामें शरीरके सब अवयव अपना अपना कार्य उत्तम रीतीसे कर सकतें हैं ।(२) सोम—सोम शब्द सोम आदि औषधी, वनस्पति, शाकभाजी, वनस्पतिका भोजन आदि अर्थमें यहां आया है । (३) श्रवः—यश अथवा यशस्वी श्रेष्ठ कर्म । श्रवःके अन्य अर्थ—ज्ञान, कर्णइंद्रिय ।

मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त ॥
आ न इन्दो वाजे भज ॥ ८ ॥
यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य ॥
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥९॥

अर्थ—(सोम-परिबाधः) वनस्पतिका प्रतिबंध (नः) हम सबका (मा) नाश न करे। तथा (अ-रातयः) शत्रु (मा जुहुरन्त) नाश न करें। हे (इन्दो[1]) सोम-वनस्पति ! (नः) हम सबके (वाजे) अन्नके लिये (आभज) प्राप्त हो जाओ।

भावार्थ—वनस्पतिका भोजन सबको प्राप्त होवे। शत्रु वनस्पतियोंका नाश न करें, क्यों कि वनस्पतियोंके नाश होनेसे सबका नाश हो सकता है।

अर्थ—हे (सोम सोम) वनस्पते ! तू (नाभौ) घरके अंदर (मूर्धा असि) श्रेष्ठ है। (ते) तेरे (ऋतस्य अमृतस्य) योग्य अन्नके (परस्मिन् धामन्) श्रेष्ठ आश्रयसे (याः प्र-जाः) जो प्रजाएं (आ-भूषन्ति) शोभतीं हैं। उनको (वेदः) जानो और (वेनः) तेजस्वी करो।

भावार्थ—घरोंमें वनस्पतिका भोजनहि श्रेष्ठ है। जो इस योग्य भोजनका सेवन करते हैं वे शोभते हैं।

१ रुद्रसूक्त

ऋग्वेद मं० १ सू० ४३ रुद्रसूक्तकी व्याख्या।

इस सूक्तकी मुख्य 'रुद्र' देवता है, और 'मित्रावरुण' तथा 'सोम' अंतर्गत देवताएं हैं। इस सूक्तमें 'रुद्र' शब्दका अर्थ 'वैद्य' है। रुद् रोगः। तं द्राति गमयति नाशयति इति रुद्रः।=रोगोंको दूर करता है इसलिये वैद्यको रुद्र कहा जाता है। इस विषयका अधिक स्पष्टीकरण

(१) इन्दु—सोम, तेज बढानेवाला अन्न।

'रुद्रदेवताका परिचय' नामक पुस्तकमें पाठक देख सकते हैं। उस पुस्तकमें रुद्र शब्दके अनेक भाव बताये हैं, उनमें एक वैद्य ऐसाभी अर्थ दिया है। इसलिये 'रुद्र देवताका परिचय' नामक पुस्तक पढनेके पश्चातहि पाठकोंको इस पुस्तकका पाठ करना उचित होगा।

देवताओंकी संगति।

इस सूक्तमें '(१) रुद्र, (२) मित्र, (३) वरुण, (४) सोम' देवतायें आगईं हैं। इनमें 'रुद्र' देवता मुख्य है और अन्य देवताएं सहायक हैं। जिस सूक्तमें जो देवता मुख्य होती है, उसीके प्रकरणके अनुकूल अन्य देवताओंका आशय और कार्य समझा जाता है। इस सूक्तमें 'रुद्र'से वैद्य प्रकरण लिजा जाता है, इसलिये अन्य सहायक देवताओंसे भी वैद्य प्रकरणानुकूल हि भाव लेना है। देखीएः—

(१) रुद्रः—वैद्य चिकित्सक, रोग दूर करनेमें सहायता देनेवाला। (A physician)

(२) मित्रः—मान्य करनेवाला, हित चाहनेवाला। (मा-माने) तोलने मापनेवाला। (A measurer)

(३) वरुणः—श्रेष्ठ। जलप्रेरक। जलकी योजना करनेवाला। (One who gives water) (वरं–water)

(४) सोमः—वनस्पति, औषधि। (A drug)

इसी सूक्तमें निम्न शब्द आते हैं। जिनका विचार यहां करना उचित हैः—

(५) रुद्रियं—औषध। (A medicine)

(६) जलाष-भेषजः—जलचिकित्सक वैद्य। (A hydropathist)

(७) स-जोषसः—प्रीतीसे सेवा करनेवाले सेवक।

इस प्रकार कई विशेष शब्द विशेष अर्थसे इस सूक्तमें आगये हैं। इन सब शब्दोंका, उस उस मंत्रका विचार करनेके समय, प्रमाणपूर्वक विचार

किया जायगा । पाठक भी वैद्यप्रकरणके अनुकूलहि विचार करके सब उपदेशका सार समझें, अन्यथा कई स्थानमें भ्रम होना संभव है ।

मंत्र १

वैद्यका लक्षण ।

इस प्रथम मंत्रमें वैद्यका गुणवर्णन है । उत्तम वैद्यके अंदर जो जो आवश्यक गुण चाहिए उनका वर्णन इस मंत्रमें किया है । देखीए:—

(१) प्र-चेतस्—(प्र) उत्तम (चेतः) बुद्धिसे युक्त । 'चेतस्' शब्दका अर्थ—Inteligence बुद्धि, thinking power विचार करनेकी शक्ति, heart हृदय, mind मन । अर्थात् 'प्र-चेतस्'का अर्थ उत्तम विचार करनेवाला, जिसका मन तथा हृदय उत्तम है । वैद्य अपने शास्त्रमें उत्तम ज्ञानी होना चाहिए । तथा हृदयके उत्तम भावोंसे युक्त होना आवश्यक है ।

(२) मीळ्हुष्टम—Most liberal अत्यंत उदार, ज्ञानी, परोपकारी । वैद्यका अंतःकरण अत्यंत परोपकारके भावसे युक्त होना चाहिए ।

(३) तव्यस्—Strong बलवान्; energetic उत्साही, फुर्तिला, तेजस्वी; courageous धैर्यशाली, निडर । वैद्य उत्साही और धैर्यशाली होना चाहिए ।

(४) हृद्—वैद्य हृदयवाला अर्थात् दयालु, प्रेमयुक्त होना चाहिए । Heart-less निर्दय, कठोर नही होना चाहिए ।

(५) रुद्र—(रुद्) रोगोंको (द्रा) दूर करनेमें समर्थ वैद्य होना चाहिए ।

इसी प्रकारके वैद्यकी प्रशंसा करना चाहिए । परंतु जो अज्ञानी, अनपढ, स्वार्थी, निरुत्साही, डरपोक, निर्दय, रोगियोंको लूटनेवाले होते हैं, उनको 'वैद्य' नहीं कहना चाहिए ।

मंत्र २

पथ्य और योग्य भोजन ।

इस मंत्रमें कहा है कि, 'अदिति' देवता सब प्राणियोंको 'इद्रिय' अर्थात् औषध करती है । 'अदिति'से सब प्राणियोंके रोग दूर होते हैं । 'अदिति' का अर्थ इस मंत्रमें मुख्य है, इसलिये प्रथम इसी शब्दका अर्थ देखेंगेः—

स यद्यदेवाऽसृजत तत्तदत्तुमध्रियत ।
सर्वं वा अत्तीति । तददितेरदितित्वं ।
सर्वस्यैतस्यात्ता भवति । सर्वमस्यान्नं
भवति । य एवमेतददितेरदितित्वं वेद ॥

शत. ब्रा. १०।६।५।५ बृहदारण्यक उप. १।२।५

"उसने जो जो उत्पन्न किया उस सबको खानेकेलिये धारण किया । वह सबको खाता है । यह ही अदितिका अदितिपन अर्थात् भोजन करनेका स्वभाव है । वह सब का भक्षक होता है । इसका सब अन्न होता है । जो अदितिका यह भक्षक स्वभाव जानता है । "

बृहदारण्यक उपनिषद्में यह वर्णन आता है । अदितिनाम परमात्माका मुख्यतया है, क्योंकि प्रलयकालमें वह सबका भक्षण करता है, जो जो पदार्थ उसके बनाये हैं, उन सब पदार्थोंका वह भोजन करता है । यह परमात्माके प्रलय करनेकी शक्तिका वर्णन है । इस सब वर्णनकी यहां हमें आवश्यकता नहीं, परंतु इसमें अदितिकी जो व्युत्पत्ति दी है, उसका यहां विचार करना है—

"अत्ति इति अदितिः ।"

अर्थात् भोजन करनेका धर्म अदितिसे लिया जाता है । 'अन्न भक्षण करनेकी रीति' अदिति शब्दसे ज्ञात होती है । 'अद्-भक्षणे' इस धातुसे 'अदिति' शब्द बनता है । अद्-इति=अदिति । भक्षण भोजन खानपान आदिके धर्म 'अदिति' शब्दसे यहां जाने जाते हैं । अर्थात् पथ्य और अपथ्य का विचार वैद्य प्रकरणके अदितिके शास्त्रमें होता है ।

रोगोंको दूर करनेके उपाय चिकित्सा-प्रकरणमें लिखनेकी आवश्यकता है । 'खानपान' का स्वास्थ्यके साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध है, यह मुख्य बात बतानेके लिये यह मंत्र इस सूक्तमें लिखा है । खानपानके उत्तम रीतीसे प्राणिमात्रका स्वास्थ्य ठीक रह सकता है । जिस प्रकार उत्तम वैद्यकी आवश्यकता है, उसी प्रकार खानपानके उत्तम प्रबंधकीभी आवश्यकता है । आहार और विहार नियमित होना चाहिए, जिससे उत्तम स्वास्थ्य रह सकता है । अनियमसे रोग होते हैं ।

'रुद्रिय' शब्दका इस मंत्रमें अर्थ 'औषध' है। परंतु 'रोग दूर करनेकी शक्ति' ऐसाभी इसका अर्थ हो सकता है । भोजनके उत्तम नियमसे शरीरमें रोगप्रतिबंधक शक्ति बढती है यह तात्पर्य है।

'अदिति' शब्दके अन्य अर्थ बहुत हैं । उनमें पृथिवी, प्रकृति, स्वतंत्रता, गाय, दूध, बुद्धि आदि मुख्य हैं । परंतु प्रकृत मंत्रमें उनका विशेष संबंध प्रतीत नहीं होता, तथा जो 'अदिति' शब्द 'अद्-भक्षणे' धातुसे बनता है, उसके ये अर्थ नहीं है । 'दो' और 'दा' धातुसे बननेवाले 'अदिति' शब्द इससे भिन्न हैं । जहां उनका प्रसंग आयेगा वहां उनका विचार होगा ।

मंत्र ३

रोगीकी प्रेमके साथ सेवा ।

रोगीकी सेवा बडे प्रेमके साथ करना चाहिए, यह इस मंत्रका तात्पर्य है। इस मंत्रमें '(१) मित्र, (२) वरुण, (३) रुद्र, (४) स-जोषसः' ये चार शब्द मुख्य हैं । रुद्र शब्दका वैद्य अर्थ पूर्वस्थलमें दिया ही है।

'यथा रुद्रः चिकेतति ।' जिस प्रकार वैद्य जानता है, अर्थात् रोग दूर करनेका उपाय वैद्य जानता है, उस प्रकार उसकी अनुमतिके अनुसार अन्य सेवकोंको सेवा करना चाहिए ।

(१) मित्र—रोगीका हित चाहनेवाला, उसका दोस्त, पडौसी, अथवा मित्रताके कारण सेवा करनेवाला, उसी प्रकार वैद्यकी संमतिके अनुसार रोगीकी सेवा करे ॥ 'मित्र' शब्दका दूसरा अर्थ (मित्र= मि+त्र=मा-त्र=(Metre, measurer) तोलने मापनेवाला होता है। तोलकर प्रमाणपूर्वक औषध आदि देनेवाला वैद्यके साथ अवश्य होना चाहिए। वैद्य औषधकी योजना करता रहे, और वैद्यकी आज्ञानुसार सब औषधियां तोलकर अथवा नापकर प्रमाणपूर्वक देनेका कार्य यह 'मित्र' करता रहे। यह आशय यहां प्रतीत होता है।

(२) वरुण—जलका अधिपति। वरुण का कार्य जल देना है। वरुणका दूसरा अर्थ वरिष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ ऐसा है।

(३) स-जोषसः—प्रीतिसे सेवा करनेवाले। 'जुष्-प्रीतिसेवनयोः।' जुष् धातुका प्रीतिके साथ सेवा करना अर्थ है। इसके अन्य अर्थ To like प्रेम करना; to take delight in दिलसे आनंदके साथ कार्य करना; to devote तन्मय होकर लग जाना; to visit वारंवार जाकर देखना। जो रोगीकी सेवा प्रेमसे करते हैं, रोगीयोंपर प्रेम करते हैं, उनकी सेवा करनेमें दत्तचित्त होते हैं, दूसरा कोई विचार न करते हुए सेवा करते हैं, वारंवार उनको देख कर शुश्रूषा करते हैं, रोगीको संतुष्ट रखकर उनकी सेवा करते हैं, उनका नाम 'स-जोषसः' होता है। इस सूक्तमें रोगीका विषय होनेके कारण यहां इस शब्दका यह आशय है।

उक्त सब प्रकारके लोक योग्य सेवा करके रोग दूर करनेमें योग्य सहायता देते रहें। यह इस मंत्रका आशय है।

मंत्र ४

जलचिकित्सक वैद्य।

इस मंत्रमें '(१) गाथपति, (२) मेधपति, (३) जलाष-भेषज' ये तीन प्रकारके वैद्य कहे हैं। इन शब्दोंका निम्न प्रकार आशय है।

(१) गाथपति—'गाथ'का अर्थ (A song) गायन ऐसा है। गानेवाला, गायक ऐसा अर्थ गाथ-पति शब्दसे व्यक्त होता है। गायनका रोग दूर करनेके साथ किस प्रकार संबंध हो सकता है, इसका विचार वैद्योंको करना उचित है। गायनसे रोगीको (Hypnotic sleep) योग-निद्रामें सुलाकर अपनी इच्छा शक्तिकी प्रेरणाद्वारा रोग दूर करनेका प्रयोग योगके प्रक्रियाओंमें है। कदाचित् इस विद्याकी सूचना इस शब्दसे होती होगी। गायनसे गानेवालेका मन आनंदित होता है, और इस कारण गायनका स्वास्थ्य के साथ संबंध है। गायनसे दीर्घ आयुष्य भी प्राप्त होता है।

'गाथ्, गाध्' इन धातुओंके निम्न प्रकारभी अर्थ होते हैं। To compile संग्रह करना, इकट्ठा करना, मिलाकर संयोग करना, जोडना। तथा to search or inquire खोजना, पता लगाना, तलाश करना, पूंछना, प्रश्न करना, परीक्षा करना। अर्थात् गाथपति अथवा गाधपति शब्दका अर्थ—जो परीक्षा करता है, प्रश्न पूच्छकर रोगके मूल कारणकी तलाश करता है।

इन अर्थोंमेंसे यहां कौनसा अर्थ लेना उचित है, इसका विचार सुविज्ञ वैद्योंको करना उचित है।

(२) मेधपतिः—'मेध' शब्दका अर्थ Juice, sap, essence सत्व, सत्, अर्क, क्षार; nourishing or strengthening drink पौष्टिक तथा बलवर्धक पेय; क्वाथ, कषाय; pith अंदरका सत्। 'मेध-पति'का अर्थ सत्, अर्क, कषाय, सार आदि प्रकारके औषध पास रखने-वाला वैद्य।

(३) जलाष-भेषजः—'जलाष'[२]का अर्थ Water जल; healing, soothing आराम देना, प्रसन्न करना। 'जलाष—भेषज' शब्द जल-

---

(१) गै-शब्दे। गै धातुका अर्थ शब्द करना है। इससे गाथ बनता है ऐसाभी एक मत है। (२) जलाषं—(ज) जन्म लेनेवाले प्राणी जिसकी (लाष) अंभिलाषा करते हैं।

चिकित्सक वैद्य, जो (Hydropathist) जलसे चिकित्सा करता है। जल-चिकित्साके विषयमें अथर्ववेदमें एक सूक्त है । देखीए:—

इदमिद्वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेषजम् ॥
येनेषुमेकतेजनां शतशल्यामपब्रवत् ॥ १ ॥
जालाषेणाभिषिंचत जालाषेणोपसिंचत ॥
जालाषमुग्रं भेषजं तेन नो मृड जीवसे ॥ २ ॥
शं च नो मयश्च नो मा च नः किंचनाममत् ॥
क्षमा रपो विश्वं नो अस्तु भेषजं सर्वं नो अस्तु भेषजम् ३

अथर्व. ६।५७।

"निश्चयसे यह औषध है । वैद्यका यह ही औषध है । इसीसे सैंकडों प्रकारके कष्ट तथा शल्योंके दुःख दूर होते हैं । जलसे सिंचन करो । जलका प्रयोग करो । जल ही बडा भारी औषध है, जिससे हम सबको सुख और आयुष्य प्राप्त होता है । इसीसे अंतःकरणकी शांति तथा बाह्य शरीरका आरोग्य प्राप्त होता है । इससे दुःख नही होता । इससे सब दोष हट जाते हैं । इसलिये यह ही औषध हम सबके पास रहे ।"

जलचिकित्साकी विद्या इस सूक्तके अंदर स्पष्ट रीतीसे है । शरीरके अंदर और बाहर जलका प्रयोग करनेसे सब रोगोंका निवारण होता है । तथा ऋग्वेदमें:—

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ॥
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥

ऋ. १०।१३७।६॥

"जल ही निश्चयसे औषध है। जल रोगोंको दूर करता है । सब रोगोंका औषध जल ही है । यह जल तेरे लिये औषध करे ।" इस प्रकार जलसे चिकित्सा करनेके विषयमें वेदमें अनेक मंत्र हैं । इन मंत्रोंका विचार विचारी वैद्य स्वतंत्रतापूर्वक कर सकते हैं । इस मंत्रमें वैद्यवाचक तीन शब्द आये हैं । जिनका आशय निम्न प्रकार प्रतीत होता है:—

(१) जलाष-भेषजः—जलचिकित्सक वैद्य। (Hydropathist)
(२) मेधपतिः—कषाय आदि देनेवाला वैद्य। (Allopathist)
(३) गाथपतिः—गायन आदि प्रयोगसे मनको वश करके रोग दूर करनेवाला। (Hypnotist)

इस तीसरे वैद्यके विषयमें निम्न मंत्र देखने योग्य है:—

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ॥
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥

ऋ. १०।१३७।७॥

"(जिह्वा) जबान (वाचः) वाणीको (पुरः गवी) अग्रभागमें प्रेरित करती है। और (दश-शाखाभ्यां) दस शाखोंवाले तथा (अनामयित्नुभ्यां) नीरोगता लानेवाले (ताभ्यां) उन दोनों (हस्ताभ्यां) हाथोंसे (त्वा) तुमको (उप स्पृशामसि) स्पर्श करता हूं। अर्थात् हस्तस्पर्शसे तेरा रोग दूर करता हूं।"

इस मंत्रमें दोनों हाथोंके स्पर्शसे रोग दूर करनेकी विद्या लिखी है। हस्तस्पर्श और शब्दोंका प्रयोग करनेसे बीमारियां दूर होतीं हैं। हाथोंकी दस शाखायें दस अंगुलियां हैं। मन वाणी और हाथ इन तीनोंको रोग दूर करनेके कार्यमें लगानेकी सूचना इसमें हैं। योगविद्यासे मानसशक्तिद्वारा बीमारको आरोग्य देनेका भाव इस मंत्रमें स्पष्ट है।

इस प्रकार इन तीनों वैद्योंके कार्यक्षेत्र हैं। ये तीनों वैद्य रुद्र होते हैं। रोग दूर करनेवाले चिकित्सक का सामान्य नाम रुद्र है। इसलिये सब प्रकारके वैद्यको रुद्र कहा जाता है।

'शं-योः' इस शब्दद्वारा वैद्यका दो प्रकारका कर्तव्य वर्णन किया है। 'शं' शब्दसे मानसिक तथा आंतरिक शांति देना वैद्यका पहिला कर्तव्य है। तथा 'योः' शब्दसे बाह्य आरोग्य देना सूचित किया जाता है। समता लाना और विषमताको दूर करना वैद्यका कर्तव्य है। केवल औषध देनाही वैद्यका कर्तव्य नहीं है, प्रत्युत रोगीका मन ठीक करनाभी उसीका काम है।

मंत्र ५

वीर्य-रक्षण और इंद्रिय-निग्रह ।

इस मंत्रमें '(१) शुक्र (२) श्रेष्ठ, और (३) देवानां वसुः' ये शब्द मुख्य हैं । इनका अर्थ देखीएः—

(१) शुक्रः—Pure शुद्ध, पवित्र; semen virile वीर्य, रेत; essence सत्व; male and female energy स्त्री और पुरुषकी शक्ति । जो पवित्र रहता है तथा जो वीर्यवान अथवा ऊर्ध्वरेता होता है उसका नाम 'शुक्र' होता है ।

(२) श्रेष्ठः—यह श्रेष्ठ शब्द सदाचारी पुरुषका वाचक है । सज्जन, सदाचारी, धार्मिक मनुष्य ।

(३) देवानां वसुः—देव शब्दका अर्थ इंद्रिय तथा शरीरके अवयव है । वसु शब्दका अर्थ निवासक अर्थात् योग्य रीतिसे ठीकठाक रखनेवाला । जो अपने इंद्रियों को उत्तम अवस्थामें रखता है उसको 'देवानां वसु' कहते हैं ।

जो मनुष्य ब्रह्मचर्यादि उत्तम नियमोंकेद्वारा अपने वीर्यका संरक्षण करता है, श्रेष्ठ सदाचारपूर्वक सब व्यवहार करता है, तथा अपने अवयवोंको स्वाधीन रखता है, वह ही सूर्यके समान तेजस्वी होता है । यह इस मंत्रका आशय है ।

'अर्थात् जो वीर्यका संरक्षण नहीं करता, दुराचारमें प्रवृत्त होता है, अपने अवयवोंको स्वेच्छासे संचार करने देता है, वह निस्तेज होता है ।

शुद्धता, पवित्रता, वीर्यरक्षण, सदाचार और इंद्रियनिग्रह आदिसे नीरोगता प्राप्त होती है । अशुद्धता, अपवित्रता, वीर्यक्षीणता, दुराचार, इंद्रियोंकी स्वैर प्रवृत्ति आदिसे रोग उत्पन्न होते हैं ।

मंत्र ६

इस मंत्रमें कहा है कि पूर्वमंत्रोक्त गुण सब प्राणियोंका आरोग्य ठीक रखते हैं । अर्थात् इसप्रकारका योग्य आचरण करनेवाला बीमारियोंसे

पीडित नहीं होगा । और इसीको 'शं' अर्थात् शांतिमय स्वास्थ्य प्राप्त होता है ।

मंत्र ७

वनस्पतिका सेवन ।

जो उक्त प्रकारका वीर्यरक्षण और इंद्रियसंयम नहीं कर सकते, उनको विविध रोगोंसे बडा कष्ट भोगना आवश्यक होता है। इस लिये ऐसे लोकोंके लिये औषधि आदिका सेवन आवश्यक है। वह ही इस मंत्रमें कहा है ।

'सोम' शब्दसे सोमवल्ली आदि सब औषधि वनस्पतियोंका ग्रहण होता है । सब वनस्पतियोंका सोम राजा है। सब औषधियोंमें सोमवल्ली मुख्य है । मुख्य का ग्रहण करनेसे लक्षणासे साधारणोंका ग्रहण हो जाता है । इस न्यायसे सोम शब्दसे वनस्पतिमात्रका ग्रहण यहां लेना उचित है । परंतु यदि कोई सज्जन 'सोम' शब्दसे केवल सोमवल्लीका बोध लेना चाहेंगे, तो वे वैसाभी कर सकते हैं ।

सोमसे शरीरकी शोभा, बलवान मन और यश प्राप्त होता है । मंत्रक यह आशय है ।

'श्री' शब्दका अर्थ—Wealth धन; dignity प्रभाव; beauty सौंदर्य; grace सुललितता; splendour तेज; lustre चमक; colour वर्ण, रंग; intellect बुद्धि; understanding समझनेकी शक्ति; superhuman power अलौकिक शक्ति; । speech भाषा, वक्तृत्व ।

'नृम्ण—नृ-मन-मनुष्योंका मन । नेताओंका मन । मानवी मन, नेतृत्वादि गुणमय श्रेष्ठ मन । शांतिसुख । आरोग्य ॥ 'श्रवः' शब्दका अर्थ—यश, कीर्ति, श्रवणशक्ति ।

इन शब्दोंके इन अर्थोंके साथ पाठकोंको इस मंत्रका विचार करना चाहिए ।

मंत्र ८

वनस्पति का भोजन।

इस मंत्रके प्रथम अर्धमें '(१) सोम-परिबाध और (२) अ-राति' ये मानवजातिके दो शत्रु हैं ऐसा कहा है।

(१) सोम-परिबाध—वनस्पति, औषधि, शाक धान्य आदिका प्रतिबंध करनेवाले जो दुष्ट होते हैं वे मानव जातिके शत्रु हैं।

(२) अ-राति—अ-दान अर्थात् परोपकार न करनेवाले, स्वार्थी, अपने हित के लिये दूसरोंका नुकसान करनेवाले जो होते हैं वे भी मानवजातीके शत्रु हैं। (Un-charitable)

ये दोनों शत्रु किसी प्राणिमात्रका नाश न कर सकें, ऐसी व्यवस्था सबको करना उचित है। मनुष्योंको चाहिए कि वे ऐसी व्यवस्था करें, की जिससे धान्य, फल, फूल और औषधिवनस्पतियोंकी बहुत वृद्धि होकर, सब मनुष्योंको यथायोग्य फलमूलाहार करनेकी संभावना हो सके।

मंत्रके उत्तरार्धमें 'इंदो वाजे भव' अर्थात् हे 'सोम ! अन्नके लिये हो जाओ।' यह भाव व्यक्त किया है। इससे वनस्पतिकाही भोजन के साथ संबंध स्पष्ट है। इस मंत्रमें शत्रुके साथ 'वनस्पतिका प्रतिबंध' वर्णन किया है तथा अन्नके साथ 'वनस्पतिका संबंध' वर्णन किया है।

मंत्र ९

इस मंत्रमें 'सोम ! नाभौ मूर्धाऽसि।' अर्थात् 'हे सोम ! तूं घरोंमें मुख्य है।' ऐसा कहा है। 'नाभि'शब्दका अर्थ—Chief point मुख्य केंद्र; home घर, गृह, होता है। 'मूर्धा'का अर्थ—मुख्य, श्रेष्ठ, शिर है। घरोंमें वनस्पति का भोजन मुख्य और श्रेष्ठ है।

'अमृत'का अर्थ—Agreeable अनुकूल; वनमुद्ग, जंगली मूंगी, आमलकी, हरीतकी, गुडूची, मागधी, तुलसी, इंद्रवारुणी, ज्योतिष्मती,

गोरक्षदुग्धा, अतिविषा, रक्तत्रिवृत्, दूर्वा, स्थूलमांस हरीतकी, वाराही-कंद आदि वनस्पतियोंका 'अमृत' नाम होता है। विषहारक औषध, औषधी, घी, दुग्ध, सुवर्ण, पारद, प्रकाश, अन्न आदि अमृतशब्दके अनेक अर्थ हैं।

अ-मृत—न मरा हुआ (Not dead) ऐसा इसका अर्थ होनेके कारण मृत शरीर अथवा मांसाहार ऐसा इसका अर्थ नहीं हो सकता। इसलिये फलभोजनकाही यह नाम होता है।

'ऋतं अमृतं' अर्थात् (Right food) योग्य अन्नही शाकान्न किंवा फलभोजन है। वनस्पतिका भोजनही मनुष्योंका योग्य अन्न है।

जो इस अन्नका भक्षण करते हैं, उनका तेज बढता है, और आरोग्य आदिकी वृद्धि होती है। फलभोजनसे बहुत रोगोंकी निवृत्ति होती है। इत्यादि इन मंत्रोंका तात्पर्य है।

इस सूक्तपर अधिक विचार करनेसे आरोग्यके कई सिद्धांतोंका पता लग सकता है। आशा है कि पाठक इसपर अधिक विचार करके बहुत खोज करेंगे।

(२) रुद्र-सूक्त ।

[ऋग्वेद मं० १ सू० ११४ । ऋषिः—कुत्स आंगिरसः । देवता—रुद्रः ।]

इमा रुद्राय॑ तवसे॑ कपर्दिने॑ क्षयद्वीराय॒ प्र भ॑रामहे मतीः ॥ यथा॑ शमस॑द्द्विपदे॒ चतु॑ष्पदे॒ विश्वं॑ पुष्टं ग्रामे॑ अ॒स्मिन्न॑नातु॒रम् ॥ १ ॥

मृ॒ळा नो॑ रुद्रो॒त नो॒ मय॑स्कृधि क्ष॒यद्वी॑राय॒ नम॑सा विधेम ते ॥ यच्छं॒ च॒ योश्च॒ मनु॑राये॒जे पि॒ता तद॑श्याम॒ तव॑ रुद्र॒ प्रणी॑तिषु ॥ २ ॥

अर्थ—(यथा) जिस प्रकार (अस्मिन् ग्रामे) इस गांवमें (विश्वं) सब प्राणिमात्र (पुष्टं) हृष्टपुष्ट और (अन्-आतुरं) नीरोग (असत्) रहे तथा (द्विपदे चतुष्पदे) द्विपाद और चतुष्पाद के लिये (शं) शांति प्राप्त हो जावे, उस प्रकार (तवसे) बलवान्, (क-पर्दिने[1]) अशक्तोंको चलानेवाले और (क्षयद्-वीराय[2]) क्षय आदि रोगोंका निवारण करनेवाले (रुद्राय) वैद्यके लिये (इमाः मतीः) ये विचार (प्र भरामहे) देते हैं ॥

भावार्थ—जिस प्रकार ग्रामके सब द्विपाद और चतुष्पाद प्राणी हृष्ट-पुष्ट, नीरोग और शांतिसे आनंदित हो जांय, उस प्रकारका अवलंबन वैद्यको करना चाहिए। वैद्य रोगोंका निवारण करने और अशक्तोंको चलानेमें समर्थ रहना चाहिए ॥

अर्थ—हे (रुद्र) वैद्य ! (नः) हम सबको (मृळ) सुखी करो। (उत नः) और हम सबको (मयः कृधि) नीरोग करो। (क्षयद्-

---

(१) **क-पर्दिन्**—कुत्सितं पर्दयति गमयति। जो बुरी अवस्थामें रहनेवाले अशक्त रोगियोंको चलनेकी शक्ति देता है ॥ (२) **क्षयद्-वीराय**—क्षयादिकं निवारयति। क्षीणता उत्पन्न करनेवाले रोगोंका निवारण करनेवाला।

अश्याम॑ ते सुम॒तिं दे॑वय॒ज्यया॑ क्षयद्वी॑रस्य॒ तव॑ रुद्र मीढ्वः ॥ सु॒म्नायन्निद्विशो॑ अ॒स्माक॒मा च॒रा- रिष्टवीरा जुहवाम ते ह॒विः ॥ ३ ॥

वीराय ते) क्षयका निवारण करनेवाले तेरा (नमसा) नमस्कारसे सत्कार (विधेम) हमसब करतें हैं । (मनु[1]; पिता[2]) मननशील पालक (यत् शं च) जो शांति और जो (योः च) रोगनिवारक शक्ति (आयेजे) प्राप्त करता है । हे (रुद्र) वैद्य ! (तव प्र-[3]नीतिषु) तेरी विशेष नीतिसे (तत्) उसको (अश्याम) हमसब प्राप्त करेंगे ॥

भावार्थ—वैद्यको उचित है, कि वह सबको आंतरिक शांति और शारीरिक नीरोगता देवे । विचारपूर्वक संरक्षण करनेसे स्वास्थ्य और रोग-प्रतिबंधक शक्ति प्राप्त होती है ॥

अर्थ—हे (मीढ्व रुद्र) उदार वैद्य ! (क्षयद्-वीरस्य ते) क्षय-निवारक तेरी (सु-मतिं) उत्तम बुद्धिको हमसब (अश्याम) प्राप्त करते है (अस्माकं विशः) हमसबकी प्रजाओंका (ते देव-य[4]ज्यया) अपनी दिव्य-योजनासे (सुम्नायन् इत्) सुख चाहता हुआ निश्चयसे (आचर) तूं अपना आचरण कर । (अरि[5]ष्ट-वीराः) रोगोंका निवारण करनेवाले हम सब (ते) तेरे लिये (हविः) अन्न अथवा दान (जुहवाम) अर्पण करेंगे ।

भावार्थ—उदार वैद्यकी संमति के अनुसार सब लोक आचरण करें । वैद्यभी सब लोकोंका हित करे । आरोग्यसंपन्न लोक वैद्यको अन्न देवें ।

---

(१) **मनुः**—मनुते इति मनुः । जो विचार करता है वह मनु कहलाता है। मननशील, विचारशील । (२) **पिता**—पाति रक्षति इति पिता । जो रक्षण करता है वह पिता कहलाता है । (३) **प्र-नीतिः—नीतिः**—Guidance मार्ग बताना; direction दिशा बताना; management प्रबंध ॥ **प्र-नीति**=विशेष प्रकारसे चालचलनका मार्ग बताना, सुव्यवहारकी योग्य दिशा बताना, उत्तम प्रबंध करना, ठीक ठीक नियमपूर्वक व्यवहार करना, विशेष धर्मनीतिसे व्यवहार करना ॥ (४) **देवयज्या**-देवानां इंद्रियाणां यज्या यज्ञः । इंद्रियोंकी पूजा। इंद्रियोंकी उत्तम प्रसन्नता रखना । दिव्य योजना (५) **अरिष्टवीराः**—अरिष्टान् दुःखरूपान् रोगान् निवारयन्ति इति । जो दुःखदायक रोगोंका निवारण करते हैं ।

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वंकुं कविमवसे निह्वयामहे ॥ आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा निह्वयामहे ॥ हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥ ५ ॥

अर्थ—(त्वेषं) तेजस्वी, (यज्ञ-साधं) सत्कर्मसाधक, (वंकुं) चपल, स्फूर्तियुक्त, (कविं) ज्ञानी, (रुद्रं) दुःखनाशक वैद्यकी (वयं) हमसब (अवसे) संरक्षणकेलिये (निह्वयामहे) प्रार्थना करते हैं। (दैव्यं हेळः[1]) इंद्रियसंबंधी क्रोध (अस्मत्) हम सबसे (आरे) दूर (अस्यतु) होवे । और (अस्य सु-मतिं) इसके उत्तम बुद्धिको (इत्) निश्चयसे (वृणीमहे) प्राप्त करेंगे ॥

भावार्थ—तेजस्वी, सचादारी, उद्योगी, ज्ञानी वैद्यके पासहि सब जावें। क्रोध और घमंड दूर करें और वैद्यकी उत्तम संमतिके अनुसार चालचलन रखें ॥

अर्थ—(वराहं[2]- वर+आहारं) उत्तम भोजन करनेवाले, (अरुषं) तेजस्वी, (त्वेषं रूपं) सुंदर रूप युक्त, (क-पर्दिनं[3]) अशक्तोंको चलाने वाले वैद्यको (दिवः) द्युलोकसे (नमसा निह्वयामहे) सत्कार-पूर्वक हमसब बुलाते हैं । वह अपने (हस्ते) हाथोंमें (वार्याणि)

---

(१) हेळः=हेड्-अनादरे To dishonour । निरादर करना, घमंडके कारण दूसरेका अपमान करना । घमंड, अपमान । हेट्-विबाधायां To be wicked, to vex दुष्टता धारण करना, कष्ट देना । बाधक होना, दुःखदायक बनना । to hate द्वेष करना । द्वेष ॥ (२) वराह=(वर+आहार) उत्तम आहार, उत्तम भोजनं । वराहं वराहारं उत्कृष्टभोजनं इति सायणाचार्यः ॥ (३) कपर्दिनं-(क-पर्दिनं) कुत्सितमपि पर्दयति—जो बीमार बहुत बुरी अवस्थामें होता है उसकोभी जो चलाने की शक्ति देता है । बुरे वायुको पेटसे निकाल देता है ॥

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो
रुद्राय वर्धनम् ॥ रास्वा च नो अमृत मर्त-
भोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥ ६ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्ष-
न्तमुत मा न उक्षितम् ॥ मा नो वधीः पितरं
मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्ररीरिषः ॥ ७ ॥

रोगनिवारक (भेषजा) औषधियां (बिभ्रत्) धारण करता है, और (अस्मभ्यं) हमसबको (शर्म) आंतरिक स्वास्थ्य, (वर्म) बाह्य दोषोंका प्रतिबंध तथा (छर्दि) वमनविरेचनआदि (यंसत्) देता है।

भावार्थ-जो वैद्य स्वयं अपना खानपान ठीक रखता है, आलसी नहीं है, औषधकी योजनासे रोगियोंको ठीक करता है, और जो तेजस्वी तथा दर्शनीय है, उसीको चिकित्साके लिये बुलाना चाहिए। तथा जो अपने साथ रोगनिवारक औषधियां रखता है और अंतर्बाह्य स्वास्थ्य प्रदान करता है ॥

अर्थ—(मरुतां) मरणधर्मवाले प्राणियोंके (पित्रे) संरक्षक (रुद्राय) वैद्यके लिये (स्वादोः स्वादीयः) मीठेसे मीठा और (वर्धनं) उन्नतिकारक (इदं वचः) यह उपदेश (उच्यते) कहा जाता है कि, हे (अमृत) अमर ! तूं (नः) हमसब केलिये (मर्त-भोजनं) मनुष्योंका भोजन (रास्व) देओ, तथा (त्मने तोकाय तनयाय) मुझे तथा बालबचोंको (मृळ) सुखी रखो ॥

भावार्थ-वैद्यको उचित है कि वह मनुष्योंको ऐसा योग्य अन्न भोजनके लिये देवे कि जिससे बडे मनुष्य तथा सब बालबचे सुखी हो जावें ॥

अर्थ—हे (रुद्र) वैद्य ! (नः महान्तं) हमारेमेंसे बडोंका (मा वधीः) वध न करो, (नो अर्भकं मा) हमारे छोटोंका वध न करो,

(१) म्रियन्ते इति मरुतः। जो मरते हैं उनको मरुत कहते हैं। Mortal मरणधर्मवा

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु
मा नो अश्वेषु रीरिषः ॥ वीरान्मा नो रुद्र
भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥८॥
उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां
सुम्नमस्मे ॥ भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाऽथा
वयमव इत्ते वृणीमहे ॥ ९ ॥

(नः उक्षन्तं मा) हमारे बढनेवालेका वध न करो, (उत नः उक्षितं मा)और हमारे बढे हुएका वध न करो । (नः पितरं मा) हमारे पिताका वध न करो । (उत नः मातरं मा) और हमारे मताका वध न करो । (नः) हम सबके (प्रियाः तन्वः) प्रिय शरीरोंको (मा रीरिषः) कृश मत करो ॥

भावार्थ-वैद्य को उचित है कि वह अविचारसे अथवा आलस्यसे किसीको अयोग्य औषध देकर कष्ट न दे तथा किसीको भी कृश न करे ।

अर्थ—हे (रुद्र) वैद्य! (नः) हम सबके (तोके तनये) बालबच्चोंमें (आयौ) मनुष्य (गोषु अश्वेषु) गाय और घोडोंमें (मा रीरिषः) कृशता न कर । (भामितः) भ्रम क्रोध आदिके कारण हमारे वीरोंका (मा वधीः) वध न कर । (त्वा) तुझे (हविष्मंतः) अन्नके साथ हमसब (सदं) अपने घरमें (हवामहे) बुलाते हैं ॥

भावार्थ—भ्रम, क्रोध अथवा आलस्यआदि दोषके कारण बुरे औषधका प्रयोग करके किसीकी हानी करना किसी वैद्यको उचित नहीं । तथा अन्य मनुष्योंकोभी उचित है कि वे जब वैद्यको बुलावें तब उसको योग्य दान देवें ॥

अर्थ—हे (मरुतां पितः) मरणधर्मवाले मनुष्योंके संरक्षक वैद्य ! (पशु-पा इव) पशुओंके पालक गवालियेके समान (अस्मे) हमसबके लिये (सुम्नं रास्व) उत्तम सुख देओ । हमसब (ते) तेरी (स्तोमान्) प्रशंसा (उप अकरं) करतें हैं । (हि) क्यों कि (ते)

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ॥ मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥ १० ॥

अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ॥ तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिंधुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥

तेरी (सुमतिः) उत्तम संमति (मृळयत्-तमा) अत्यंत सुख देनेवाली है। (अथ) इसलिये (वयं) हमसब (ते अवः) तेरे से संरक्षण (इत्) निश्चयपूर्वक (वृणीमहे) प्राप्त करते हैं ॥

भावार्थ—जिसप्रकार गवालिया पशुओंको बुरे मार्गसे बचाता है, उस प्रकार वैद्य सब मनुष्योंका कुपथ्यसे संरक्षण करे। क्यों कि वैद्यकी उत्तम संमतिके अनुसार चलनेसे हि मनुष्यमात्रको सुख मिल सकता है। इस लिये सब मनुष्य वैद्यकी उत्तम संमतिके अनुसार अपना व्यवहार करते रहें ॥

अर्थ—हे (क्षयद्-वीर) क्षयनिवारक ! (ते) तेरा (गो-घ्नं) गायका घातक (उत पुरुष-घ्नं) और मनुष्यका घातक गुण (आरे) दूर रहे। (अस्मे) हम सबके लिये (ते सुम्नं) तेरा उत्तम मन (अस्तु) प्राप्त होवे। (च नः मृळ) और हमसबको सुखी करो। हे (देव) श्रेष्ठ ! (च अधिब्रूहि) और उपदेश करो तथा (द्वि-बर्हाः) दोनोंको बढानेवाला तूं हमसबके लिये (शर्म यच्छ) शांति प्रदान करो ॥

भावार्थ—वैद्य अपने शांत मनसेहि सबको उत्तम संमति देवे। घातपातका भाव सदा दूर रखे। सबको ऐसा उपदेश सदा करे कि जिससे सब सुखी हो जावें ॥

अर्थ—(अवस्यवः) रक्षाकी इच्छा करनेवाले हमसब (अवोचाम) कहते हैं कि (अस्मै) इस प्रकारके वैद्यके लिये हमारा (नमः) नमस्कार है (मरुत्वान् रुद्रः) मरणधर्मवाले मनुष्योंके साथ रहनेवाला

वैद्य (नः हवं) हमारी प्रार्थना (शृणोतु) सुने । मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथिवी और द्युलोक हम सबको (तत्) उस प्रकार (ममहन्तां) बढावें ॥

भावार्थ—उत्तम वैद्यका कोई अपमान न करें, तथा वैद्यको उचित है, कि वह लोकोंकी सब बात अच्छी प्रकार सुने । और सब मिलकर परस्परकी उन्नति करें ॥

२ रुद्र सूक्त ।

ऋ. १।११४ रुद्र सूक्त की व्याख्या ।

ऋग्वेद १।४३ के अनुसार इस १।११४ सूक्तमें भी 'रुद्र' शब्दका 'वैद्य' अर्थ है ऐसा प्रतीत होता है । क्यों कि इस १।११४ सूक्तके मंत्र ५ में लिखा है कि "रुद्र हाथमें रोग-निवारक औषधियां धारण करता हुआ, मनुष्योंको आंतरिक शांति, बाह्य संरक्षण और प्राप्त रोगोंका वमन-विरेचनादिद्वारा निवारण करता है ।"

इस सूक्तकी 'रुद्र' ही मुख्य देवता है, परंतु अंतिम मंत्रमें मित्र, वरुग, अदिति, सिंधु, पृथिवी और द्यौः ये देवताओंके नाम आये हैं । इनका विचार अंतिम मंत्रके विचारके समय किया जायगा ।

मंत्र १

नगरका आरोग्य ।

ग्राम, नगर, पत्तन, पुरी आदिमें रहनेवाले मनुष्योंको तथा इतर प्राणिमात्रोंको आरोग्यसंपन्न रखकर, हृष्टपुष्ट सुदृढ और उत्साही रखना वैद्यका कर्तव्य है । यह बात इस प्रथम मंत्रमें स्पष्टतासे कही है । जो वैद्य इस प्रकार नागरिक आरोग्यकी व्यवस्था उत्तम प्रकारसे करता है, अथवा नागरिक आरोग्य ठीक करनेके प्रबंधोंका उपदेश नगर-वासियोंको करता है, उसीकी प्रशंसा करना योग्य है यह इस मंत्रका तात्पर्य है । नगरवासियोंको उचित है कि वे इसप्रकारके वैद्योंको

नागरिक स्वास्थ्य-विभाग (Public health) की व्यवस्थापर नियुक्त करें और उनकी संमतिके अनुसार नगरवासियोंके स्वास्थ्यकी रक्षा करें।

नागरिक स्वास्थ्य की परीक्षा।

नागरिक आरोग्यकी परीक्षा नगरवासियोंके आयुष्यमर्यादासे होती है। डेढसौ वर्षतक आयुवाले मनुष्य जिस नगरमें रहते हैं उस नगरका आरोग्य उत्तम है, सौ सौ वर्षके करीब आयुवाले मनुष्य जिस नगरमें रहते हैं, उस नगरका आरोग्य मध्यम समझना उचित है, तथा इससे अल्प आयुमें जिस नगरमें मृत्यु होता है, उस नगरका आरोग्य निकृष्ट दर्जेका है, ऐसा मानना उचित है। इसका विचार पाठक "मानवी आयुष्य" नामक पुस्तकमें देख सकते हैं, तथा नागरिक आरोग्य-रक्षण-विषयक विचार य० अ० ३० की व्याख्या अर्थात् "मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन" नामक पुस्तकमें पाठक देख सकते हैं। इस-प्रकार पाठकोंको योग्य है, कि वे वेदके भिन्न भिन्न स्थानकी संगति पठनके समय लगाते जांय। ऐसा करनेसेहि वेदकी प्राचीन प्रणाली फिर स्थापन हो सकती है।

इस प्रथम मंत्रमें कई शब्दोंका विशेष मनन करना आवश्यक है। देखीए निम्न शब्दः—

(१) तवस्—Old वृद्ध; strong बलवान, शक्तिशाली; great बडा, महान। इसके अर्थ-'तव्यस्' शब्दके अर्थके समानहि हैं, इसलिये यहां पूर्वसूक्तके प्रथम मंत्रकी व्याख्यामें 'तव्यस्' शब्दके अर्थ पाठक देखें। वैद्य वृद्ध और धैर्यवान् होना चाहिए। वृद्ध होनेका तात्पर्य अनुभव प्राप्त होनेमें हैं। जिसको अधिक अनुभव होता है वह ही अच्छा वैद्य होता है।

(२) क-पर्दिन्—'पर्द्' धातुका अर्थ 'पेटकी हवामें गति उत्पन्न करके उस बुरी हवाको अपानरूपमें परिणत करके नीचे फेंकना' है। 'क' शब्दका अर्थ 'बुराई' है। पेटमें जो बुरी हवा होती है, उसको अपानवायुके रूपमें बाहेर निकालना 'क-पर्दिन्' का कार्य है। पेटमें बुरा वायु भरनेसे पेट फूल जाता है, और रोगीको बडा कष्ट होता है।

इसलिये औषधियोजनाद्वारा अपानवायुको ठीक प्रकार रखनेका कार्य वैद्यका है। इस अर्थसे यह नाम वैद्यके लिये आता है।

'कपर्द'का दूसरा अर्थ शिखा है। जो शिखा धारण करता है उसकोभी 'कपर्दिन्' कहते हैं।

'पृथ्, पृद्' धातुका अर्थ 'गति देना, फेंकना' है। बुरी अवस्थामें रहे बीमारकोभी जो औषधोंद्वारा हलचल करनेकी शक्ति देता है। अथवा शरीरके अंदर प्राप्त हुए विषम पदार्थोंको अथवा कुत्सित पदार्थोंको बाहेर फेंकता है। उसकाभी नाम 'क-पर्द' होता है।

'पर्द्' धातुका To fast लंघन करना अर्थ है। बुरी अवस्थामें पडेहुए बीमार को लंघनद्वारा जो ठीक करता है उसका 'कपर्द, कपर्दिन्' नाम होता है। इस शब्दके विविध अर्थ हैं इसलिये पाठकों को विचार करना चाहिए कि यहां कोनसा विवक्षित है।

(३) क्षयद्-वीर='क्षय, क्षयत्,' आदि शब्द क्षयआदि रोगोंसे आनेवाली क्षीणता के बोधक हैं। Wasting dis-ease कृशता लानेवाले क्षयआदि रोग। 'वीर' शब्द का अर्थ निवारण करनेवाला, प्रतिबंधक, अथवा निवारक है। जो क्षयआदि रोगोंका तथा उन रोगोंके दुष्ट परिणामोंका निवारण करता है उसका यह नाम है।

'क्षयद्वीर' शब्दके अनेक अर्थ हैं। 'क्षयत्' शब्दका 'निवासक' ऐसाभी अर्थ होता है। 'क्षि' धातुका 'निवास करना, रखना, रहना' ऐसा अर्थ है, तथा 'क्षय, नाश, कमजोर होना' ऐसा भी अर्थ है। 'नाश' अर्थ लेकर ऊपर दिया आशय निकलता है। अब दूसरा अर्थ लेकर आशय देखना है। 'वीरोंका निवासक' ऐसा इसकाआशय दूसरे अर्थसे होता है। डा० मूर साहबनें इस शब्दपर बडी टिप्पणी लिखी है। (देखोOriginal sanskrit texts, Vol IV page 301) Governing men, governing heroes cammander of heroes, मनुष्यों पर शासन करनेवाला, वीरोंका नायक, शूरोंका सेनापति आदि अर्थ म० बोथलिंग,और म० रॉथ आदि पंडितोंको पसंत हैं। म० व्हिटने महोदय Destroyer of heroes वीरोंका नाशक, यह अर्थ पसंद करता है।

श्री० सायणाचार्यजी इसका अर्थ निम्न प्रकार करते हैं ।

(१) 'निवसद्भिः......वीरैः पुत्रादिभिरुपेतः ।' (ऋ. ८।१९।१०) वीर अथवा पुत्रोंके साथ रहनेवाला । (२) 'यस्मिन्सर्वे वीराः क्षीयन्ते। ऋ. १।१०६।४ जिसमें सब वीर पूरे होते हैं । (३) 'क्षयन्तो विनश्यन्तो वीरा यस्मिन्......... । यद्वा क्षयतिरैश्वर्यकर्मा । क्षयन्तः प्राप्तैश्वर्या वीराः......पुत्रा......यस्य ।' (ऋ. १।११४।१) जिसमें वीर नष्ट होते हैं । अथवा 'क्षि' धातुका अर्थ ऐश्वर्यवान होना है । जिसके वीर पुत्र ऐश्वर्यवान हुए हैं ।

श्री० महीधराचार्य 'क्षयन्तो निवसन्तो वीरा यत्र ।' (वा. यजु. १६।४८) जिसके साथ शूर रहते हैं । किंवा 'क्षयन्तो नश्यन्तो वीरा रिपवो यस्मात्।' (य० १६।४८) जिसके कारण शत्रु नाश को प्राप्त होते हैं । ऐसा अर्थ करते हैं ।

'शत्रुका नाश करनेवाला' यह अर्थ वैद्यके विषयमें भी ठीक लग सकता है । रोगरूपी शत्रुओंका नाश करनेवाला वैद्य होता है । शत्रूका निवारण करनेवालेको भी वीर कहते हैं ।

श्री० स्वा० दयानंद सरस्वतीजी निम्नप्रकार अर्थ करते हैं ।

'क्षयन्तो दोषनाशका वीरा यस्य ।' (ऋ. १।११४।१) जिसके दोषों के नाश करनेवाले वीर पुरुष विद्यामान हैं ।

पाठकोंको उचित है, कि वे इन सब अर्थोंका मननकरके संपूर्ण मंत्रका आशय समझलें ।

मंत्र २

स्वास्थ्य और व्याधि–निवारण ।

इस मंत्रमें 'शं' और 'योः' ये दो शब्द मुख्य हैं । 'शं' शब्द स्वास्थ्य, नीरोगता, मानसिकशांति आदि भाव बताता है और 'योः' शब्द बाहेरसे आनेवाले आपत्तियोंको रोकना बताता है ।

शं—रोगाणां शमनं, }
योः–भयानां यावनं। } इति सायणाचार्यः । ऋ. १।१४।२

पहिला शब्द नीरोगताकी अवस्था बताता है और दूसरा शब्द आनेवाले आपत्तिका प्रतिबंध बताता है। मनुष्यको अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करना उचित है तथा भविष्य कालमें रोगोंका उपद्रव न होनेकी व्यवस्था करना भी उचित है। शांति और रोगप्रतिरोधक शक्ति हरएक मनुष्यको प्राप्त करना उचित है।

पिता मनुः—शब्द विशेष महत्वपूर्ण है। 'मनु' शब्द मननशील मनुष्यका वाचक है। संरक्षण करनेवालेका नाम पिता है। अपनी रक्षा करनेवाला तथा विचारपूर्वक अपना व्यवहार करनेवाला मनुष्य अपना स्वास्थ्य ठीक रख सकता है। यह भाव इन शब्दोंद्वारा इस मंत्रमें सूचित किया है। मनु का Man, mankind मनुष्यमात्र ऐसा अर्थ कोशोंमें है। Thinking faculty विचारशक्ति यह भी इसका एक अर्थ है।

नीति—Guidance मार्ग बताना। **प्रणीति** (प्र-नीति) विशेष प्रकारसे व्यवहार करना। आचार व्यवहार विशेष रीतिसे विधिनियमपूर्वक करनेका तात्पर्य इस शब्दसे बोधित होता है। स्वास्थ्यरक्षाके विशेष तत्वोंका शास्त्र इस शब्दसे सूचित होता है। प्र-नीति=Special guidance.

वैद्यको उचित है कि वह सबको स्वास्थ्य-नीति का उपदेश करे और लोकोंको उचित है कि वे स्वास्थ्य-नीतिके अनुसार अपना आचारव्यवहार करते रहें।

मंत्र ३

सब प्रजाका आरोग्य।

उदार वैद्यकी संमतिके अनुसार सब लोक आचरण करें। यह सूचना इस मंत्रके पूर्वार्ध में है। उदार वैद्यही योग्य सूचना कर सकता है।

स्वार्थी वैद्य अपने स्वार्थके कारण लोकोंको ठीक उपदेश नहीं देगा। इसलिये उदार परोपकारी वैद्यका उपदेशही सबको सुनना उचित है।

देव-यज्या—इस मंत्रमें यह शब्द विशेषअर्थसे प्रयुक्त किया है। 'देव' शब्दका 'इंद्रिय' अर्थ पहिले दिया ही है। 'यज्' का अर्थ 'सत्कार-संगति-दान' है। इंद्रियोंका सत्कार करना। अर्थात् इंद्रियोंकी प्रसन्नता रखना। विद्वानोंका सत्कार, तथा पृथिवी जल वायु आदिकी प्रसन्नता रखना भी इसका अर्थ है। वास्तविक मनुष्योंका कल्याण इंद्रियों, विद्वानों तथा जल-वायु आदिकोंकी प्रसन्नतापर निर्भर है। यह ही देवयजन है।

अरिष्टवीर—'अरिष्ट-वीर' का अर्थ दुःखोंका निवारण करना है। तथा 'अ-रिष्ट-वीर' का अर्थ जिसके शूरवीरोंका नाश नहीं हुआ है। दोनों अर्थोंके साथ इस मंत्रका विचार करना चाहिए।

हविः–हवि का मुख्य यौगिक धात्वर्थ 'दान' है क्यों कि दान अर्थके 'हु' धातुसे यह शब्द बनता है। (हु-दान, आदानयोः) इसलिये 'दान' ऐसा इसका मुख्य अर्थ है, और यज्ञ, जल, घी, हवनसामग्री आदि अर्थ लाक्षणिक हैं। वैद्यकी सहायता के लिये उसको उचित दान देना सबको योग्य है, यह आशय मंत्रके अंतिमभागका है।

मंत्र ४

क्रोधादि विकारोंको दूर रखो।

आरोग्य के लिये क्रोध द्वेष आदि विकारोंको दूर रखना उचित है। क्रोध आदि दुष्ट मनोविकार आरोग्यका सर्वथा घात करते हैं। क्रोधके कारण शीघ्र ही, जवानीमें ही वृद्ध अवस्था प्राप्त होती है। इस लिये इन सब मनोविकारोंको दूर करना उचित है। यह हि भाव—

आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु।

'दूर हमारेसे इंद्रियोंका क्रोध फेंका जावे।' इस मंत्रभाग में कहा है। हेळ, हेड, Hate अर्थात् द्वेष, यहहि भाव यहां है।

हेड—शब्दका अर्थ Disregard अनादर, अपमान; slight भूल, चूक, निर्बलता; neglect भूलजाना, अधुरा छोडना। ये सब भाव बुरे हैं; इसलिये इन सब भावोंको दूर करना चाहिए, तभी स्वास्थ्य ठीक हो सकता है। मनकी शुद्ध अवस्थापर स्वास्थ्य निर्भर है । इस लिये बुरे भावोंको दूर करके मनको शुद्ध करना आवश्यक है।

द्वेष आदि बुरे भावोंको दूर करना और 'सुमति' को मनमें स्थापन करना। यह ही आरोग्यका मुख्य साधन है जो इस मंत्रके उत्तर अर्धने बताया है।

मंत्रके प्रथम अर्धमें वैद्यके कई गुण वर्णन किये हैं। तेजस्वी, सत्कर्मका साधन करनेवाला, फुर्तिला ज्ञानी वैद्य चाहिए। निस्तेज, मरियल, दुराचारी, आलसी, अनपढ जो होगा उसके पास कोई भी न जांय, क्योंकि उससे सच्चा आरोग्य प्राप्त नहीं हो सकता।

मंत्र ५

औषधियोंकी योजना।

इस मंत्रका अर्थ युरोपीयन पंडित बडा विलक्षण करते हैं। 'दिवो वराहं' ये दो पद अलग मानकर उनहींका अर्थ (The wild-boar of the sky) आकाशका जंगली सूबर, ऐसा करते हैं। (देखीए म. ग्रिफिथ साहबका अंग्रेजी भाषांतर ऋ. १।११४।५) डा. मूर साहब (The ruddy boar of the sky) आकाशका लाल सूवर, ऐसा अर्थ करते हैं। परंतु यहां 'वराह' का अर्थ सूवर नहीं है।

श्री० सायणाचार्य 'वराह' का अर्थ (१) 'वराहं वराहारं उत्कृष्टभोजनं' उत्तम भोजन करनेवाला, ऐसा करते हैं। और (२) 'वराहवद्दृढांगं' सूवर के समान जिसका बलवान शरीर है, ऐसा भी करते हैं।

'वर+आहार' शब्दोंसे 'वराह' शब्द बनाया जाता है इसलिये यहही अर्थ इस स्थानपर उचित है। वैद्यप्रकरणमें योग्य, पथ्य और उत्तम श्रेष्ठ भोजन का संबंध प्रकरणानुकूलहि है।

इस मंत्रके पूर्वार्धमें तेजस्वी और सुंदर वैद्यकोहि बुलानेको कहा है। वैद्यहि यदि कुरूप, मरियल, बीमार, अशक्त, दुर्मुख हुआ तो उसके व्यक्तित्वका असर रोगीपर क्या हो सकता है? वैद्यके सुंदर और प्रसन्न मूर्तिको देखकर रोगीके मनमें यह भाव आ सकता है कि, 'हां यह वैद्य मुझे नीरोग बना सकता है'। इसलिये मंत्रमें जो कहा है कि सुंदर और तेजस्वी वैद्यको हि बुलाओ, वह बिलकुल योग्य है। वैद्यके सुंदर मूर्तिका तथा प्रसन्नवदन का परिणाम रोगीके मनपर निश्चयसे अच्छा हो सकता है।

'वैद्य अपने हाथमें रोगनिवारक औषधियां लेकर आता है।' यह मंत्रमें आगे बात कही है। जिस समय वैद्य बीमारके पास जाता है उस समय उसके साथ थोडीसीं उत्कृष्ट औषधियां अवश्य रहनीं चाहिए।

रोगीकी अवस्थाके अनुकूल यदि कोई औषधि वैद्यके प्रेममय हाथसे रोगीको प्राप्त होगी, तो उसका परिणाम बहुतहि अच्छा हो सकता है। रोग दूर करनेमें मनकी अवस्थाका विचार करना वैद्यका मुख्य कार्य है। यदि रोगीका निश्चय हो जायगा, कि अब मैं अच्छा हो रहा हूं, तो उस मानसिक अवस्थासे ठीक होनेका मार्ग सुगम हो जाता है।

'शर्म' नाम उस अवस्थाका है कि, जो आरोग्यसे मानसिक शांति प्राप्त होती है। 'वर्म' नाम उस शक्तिका है कि जो बाहेर से आनेवाले बीमारीको रोकती है। वीरों के कवचका नाम 'वर्म' होता है, इसलिये कि उससे शत्रूके शस्त्रोंका आघात शरीरपर नहीं होता और शरीरका बचाव उससे होता है। शरीरकी 'वर्म' शक्ति भी वह हि है कि जो रोगोंके आक्रमणसे शरीरका बचाव करती है। 'छर्दि' वमन विरेचन स्वेदन आदिको कहते हैं। शरीरमें प्रविष्ट हुए विषको बाहर निकालना 'छर्दि' का तात्पर्य है। (छर्द्-वमने) वमन अर्थात् कय करना, (छृद्-संदीपने) संदीपन और दीप्ति अर्थात् भूख प्रदीप्त करना तथा इन दो कर्मोंद्वारा शरीरके सब व्यवहार ठीक करना 'छर्दि' का तात्पर्य है।

मनको शांत रखना, बाहेरसे आनेवाले विषोंका प्रतिबंध करना तथा शरीरमें प्राप्तहुए विषोंको बाहेर निकालना और इन तीन प्रकारोंसे प्राणिमात्रका स्वास्थ्य ठीक रखना वैद्यका कर्तव्य है।

मंत्र ६

मनुष्योंकेलिये योग्य अन्न।

'मरुत, मर्त्य, मर्य, मर्त' Mortal आदि शब्द एकहि गोत्रके हैं और इनका अर्थ 'मरणधर्मवाला मनुष्य' ऐसा है यह बात 'रुद्र देवताका परिचय' नामक पुस्तक में स्पष्ट बताई है। 'मरुतां पिता' इन शब्दोंका अर्थ 'मनुष्योंका संरक्षक' इतनाही यहां है। वैद्य मनुष्योंका संरक्षण करता है, इस विषयमें किसीको शंका नहीं हो सकती। क्योंकि मनुष्योंका आरोग्य वैद्यके उपदेशपर बहुत अंशमें निर्भर है।

इस मंत्रके पूर्वार्धमें 'वैद्यको सबसे मीठा उपदेश' किया है, और सूचित किया है, कि वैद्यकी भलाई अथवा उन्नति इसी बातसे होगी। वह मीठा उपदेश यहही है कि रोगी मनुष्योंके लिये मनुष्योंके योग्य अन्न (मर्त-भोजनं) हि दिया जावे।' कई वैद्य रोगीको हिंस्र पशुके योग्य अन्न देते हैं। ऐसा करना योग्य नहीं है। मनुष्य फलभोजी, शाकाहारी तथा धान्यभोजी प्राणी है इसलिये उसको पथ्य ऐसाहि कहना चाहिए कि जो उसकेलिये योग्य हो। और इस प्रकारके योग्य अन्नद्वारा बालबच्चोंको तथा बडे मनुष्योंको भी आरोग्य प्राप्त कराके सुखी करना चाहिए।

मंत्रके उत्तरार्धमें 'अ-मृत' शब्दसे वैद्यको संबोधित किया है। लोकोंको मृत्युसे दूर रखनेका कार्य वैद्यका है, यह बात इसशब्दसे सूचित होती है।

मंत्र ७-८

वैद्य प्रमाद न करे।

वैद्यके भूल अथवा दोष से, आलस्य और बेख्यालीसे, क्रोध और अज्ञानसे रोगी मर जाते हैं। इस लिये सदा सावध रहनेकी जिम्मेवारी वैद्यपर है। इन दोषोंके कारण यदि किसीकी मृत्यु होगई, तो उसका उत्तरदाता वैद्य होगा। यह बात अष्टम मंत्रके उत्तरार्धसे सूचित की है।

मंत्र सातमें यह आशय है, कि वैद्य अपनी असावधानताके कारण न किसीको कृश करे तथा न किसीका घात करे। वैद्यकी थोडीसी भूलके कारण दूसरोंके बालबच्चे अथवा मातापिता मृत्युके वशमें होना कोई बडीबात नहीं है। इसलिये वैद्यको उचित है कि वह सदा सावध रहे।

न केवल मनुष्यों परंतु पशुओंके विषयमें भी वैद्यको बडी दक्षता धारण करना चाहिए। दक्षता और सावधानता न रखनेके कारणहि वैद्य बडेबडे प्रमाद कर सकता है। और वैद्यके दोषके कारण दूसरोंको मरना आवश्यक होता है।

'भामितो मा वधीः।' अर्थात् मनके दोषोंके कारण दूसरोंका वध न कर। यह वाक्य यहां मुख्य है। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, चित्तका वेग अथवा क्षोभ आदिके कारण किसीका वध नहीं होना चाहिए। सब वैद्योंको उचित है। कि वे इस उपदेशकी ओर अपना विशेष ध्यान देदें। अपनेपास जितना समय हो उतनेही बीमार देखें। पैसेके लालचसे रोगियोंका घातपात न करें॥

मंत्र ९–१०

वैद्यकी संमति।

मंत्र ९ में गवालिया की उपमा वैद्यकेलिये दी है। गौवों की रक्षा करता हुआ गवालिआ जिसप्रकार गौवों को बुरे रास्तेसे बचाता है, उस प्रकार वैद्य सब जनताको बीमारियोंसे योग्य उपदेशद्वारा बचावे।

वैद्यकी संमतिही सच्चा कल्याण करनेवाली है। वैद्य की संमतिसे संरक्षित होतेहुए मनुष्य रोगोंसे बच सकते हैं। वैद्यको उचित है, कि वह सबको आरोग्यके मार्ग का उपदेश करे और लोकोंको भी उचित है, कि ये वैद्यके उपदेश के अनुसार अपना व्यवहार करें।

मंत्र ११

जनता की उन्नति।

'नः ममहन्तां' हम सबकी उन्नति होवे। सब मनुष्योंके मनमें यह

हि भाव रहना चाहिए । शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक, आरोग्यविषयक, आयुष्य के संबंधमें तथा अन्य सब प्रकार से मनुष्यमात्रकी उन्नति होना चाहिए । मैं हरएक प्रकारकी उन्नति उत्तम नियमों का आचरण करता हुआ अवश्य प्राप्त करूंगा, ऐसाहि विचार हरएकको अपने मनमें धारण करना चाहिए । दोषोंके कारण अवनति और निर्दोषतासे उन्नति होती है इसलिये जहांकी उन्नति प्राप्त करना है वहां पूर्णता की स्थापना करके वहांके दोषों को दूर रखना सबको उचित है।

उन्नति करनेवाले मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथिवी और द्यौः ये देव हैं । (१) **पृथिवी**–शब्दसे भूमि, मातृभूमी, अपना देश, राष्ट्र, अपनी जमीन आदिभाव व्यक्त होता है । (२) **सिंधु**–शब्दसे नदी, जल, समुद्र आदि पदार्थ बोधित होते हैं । (३) **द्यौः**—शब्दसे आकाश, वायु, सूर्यआदि पदार्थ ध्वनित होते हैं । (४) **अदिति**–शब्दसे बुद्धि, स्वातंत्र्य, स्वाधीनता, पवित्रता, नीरोगता, वक्तृत्व, गाय, दूध आदि पदार्थ सूचित होते हैं । (५) **मित्र**–शब्दसे दोस्त, हित करनेवाला, प्राणआदिका बोध होता है । (६) **वरुण**—शब्दसे वरिष्ठ, श्रेष्ठ, समुद्र, जल, अंतरिक्ष, सूर्य आदिका बोध होता है ॥

ये सब पदार्थ मनुष्यमात्रकी उन्नति करनेमें सहायता देते हैं । मनुष्यको चाहिए कि वह इनपदार्थोंद्वारा अपनी उन्नतिका साधन करे । पुरुषार्थ करनेवाला उन्नति प्राप्त कर सकता है । पुरुषार्थके विना उन्नति प्राप्त होना असंभव है ।

उक्त पृथिवीआदि शब्दोंके प्रत्येकशब्दसे एकएक पदार्थ सूचित होता है, अथवा अनेक पदार्थ सूचित होते हैं इसका विचार इस समयतक निश्चित नहीं हुआ । यहही इसमंत्रका उत्तरार्ध ऋग्वेदमें २० वार, और वा० यजुर्वेदमें २ वार आया है । इतनेवार आनेके कारण इसका महत्त्व विशेष है । इसलिये इसपर विशेष विचार होना चाहिए । आशा है कि पाठक भी विचार करेंगे ।

(३) रुद्र-सूक्त।

(ऋग्वेद मं० २ सू. ३३ ॥ ऋषिः—गृत्समदः । देवता—रुद्रः)

आ ते॑ पितर्मरुतां सु॒म्नमे॑तु मा नः॒ सूर्य॑स्य सं॒दृशो॑
युयोथाः ॥ अ॒भि नो॑ वी॒रो अर्व॑ति क्षमेत॒ प्र
जा॑येमहि रुद्र प्र॒जाभिः॑ ॥ १ ॥

त्वाद॑त्तेभी रुद्र॒ शन्त॑मेभिः श॒तं हिमा॑ अशीय
भेष॒जेभिः॑ ॥ व्य१॒स्मद्द्वेषो॑ वित॒रं व्यंहो॒ व्यमी॑-
वाश्चातयस्वा॒ विषू॑चीः ॥ २ ॥

अर्थ—हे (मरुतां पितः) मनुष्योंके रक्षक (रुद्र) वैद्य । (नः) हम सबको (ते सुम्नं) तेरा उत्तम मन (आ एतु) प्राप्त होवे तथा तु (सूर्यस्य संदृशः) सूर्यका उत्तम दर्शन (मा युयोथाः) हमसबसे पृथक् न करो (नः वीरः) हमसबके वीर (अर्वती) शत्रुओंपर (अभि क्षमेत) हमला चढावें । और हमसब (प्रजाभिः प्रजायेमहि) प्रजाओंके साथ वृद्धिको प्राप्त होवें ।

भावार्थ— वैद्यकी उत्तम संमति सब लोकोंको ज्ञात होवे । कोई प्राणी सूर्यप्रकाशसे वंचित न रहे । मनुष्योंमें शौर्यवीर्यादि गुण बढें और प्रजाकी उन्नति होती रहे ।

अर्थ—हे (रुद्र) वैद्य ! (त्वा दत्तेभिः) आपके दियेहुए (शं-तमेभिः भेषजेभिः) शांतिकारक औषधोंसे (शतं हिमाः) सौ वर्ष (अशीय) हम सब प्राप्त करेंगे । (अस्मत्) हम सबसे (द्वेषः) द्वेषभाव को (चातयस्व) दूर करो । (अंहः) पापविचारोंको (वि तरं) दूर करो । (विषूचीः) विषूचिका आदि (अमीवान्) रोगोंको (विचातयस्व) दूर करो ।

भावार्थ—वैद्य इसप्रकार औषधकी योजना करे कि जिससे रोगोंकी निवृत्ति होवे, शांति प्राप्त होवे, मन शुद्ध होकर द्वेषभाव दूर होवे, पापविचार दूर होकर सब रोगबीज नष्ट होकर शरीर शुद्ध होसके ।

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ॥ पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥ ३ ॥

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ॥ उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (वज्रबाहो रुद्र) शस्त्र हस्त वैद्य । तू (जातस्य) बनेहुए जगतकी (श्रिया) शोभासे (श्रेष्ठः असि) श्रेष्ठ है । (तवसां तवस्तमः) बलवानोंमें बलिष्ठ तू (नः) हम सबको (अंहसः पारं) पापके पार (स्वस्ति–सु+अस्ति) आरामके साथ (पर्षि) पहुंचाओ । (रपसः) क्लेशोंके (अभीतीः-अभि+इतीः) सब प्रकारके आक्रमणोंसे (युयोधि) युद्ध कराओ ॥

भावार्थ—वैद्य सब जगतकी शोभा बढाता है इस लिये श्रेष्ठ और शक्तिमान है । पाप और बुरे भावोंको दूर करनेसे स्वाथ्यकी प्राप्ति हो सकती है ।

अर्थ—हे (वृषभ रुद्र) बलवान वैद्य । (त्वां) तुझे (नमोभिः) नमस्कारोंसे हम सब (मा चुक्रुधाम) क्रोधित न करें । (दुष्टुती मा) बुरी स्तुतिसे क्रोधित न करें । तथा (स-हूती) वारंवार पुकार करनेसे क्रोधित न करें । मैं (शृणोमि) सुनता हूं कि तूं (भिषजां) वैद्योंमें (भिषक्-तमं) श्रेष्ठ वैद्य है । इसलिये (नः वीरान्) हम सबके (वीरान्) वीरोंको (त्वं) तू (भेषजेभिः) औषधोंसे (उत् अर्पय) उत्तम आरोग्य अर्पण करो ॥

भावार्थ—हांजीहांजी, मिथ्यास्तुति, तथा वारंवार पुकार करके कोई भी वैद्यको क्रोधित न करे । सबसे श्रेष्ठ वैद्यकी दवा का सेवन करके ही सब लोक आराम प्राप्त करें ॥

हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं
दिषीय ॥ ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः
सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥ ५ ॥
उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा
नाधमानम् ॥ घृणीव छायामरपा अशीया
विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥ ६ ॥

अर्थ—(यः) जो (हविर्भिः) अन्नयुक्त (हवीमभिः) आह्वानों-द्वारा (हवते) बुलाया जाता है, उस (रुद्रं) वैद्यको (स्तोमेभिः) धनोंसे (अव दिषीय) संतुष्ट करता हूं । वह (ऋत्-उत्-अरः) सत्य उन्नतिके नियमोंका प्रवर्तक (सुहवः) स्तुत्य और (बभ्रुः) पोषणकर्ता (सु-शिप्रः) फुर्तिला है । वह (अस्यै मनायै[1]) इस घमंडकेलिये (नः) हम सबका (मा रीरधत्) नाश न करे ॥

भावार्थ—वैद्यको अन्न धनआदि देकर संतुष्ट करना चाहिए । वैद्य घमंडसे किसीका नाश न करे, वह आरोग्यके सत्य नियमोंका प्रचार करके सबका पोषण करे तथा सब काम फुर्तिसे करे ॥

अर्थ—(मरुत्वान् वृषभः) मर्त्योंसे युक्त बलवान वैद्य (नाधमानं) नाथ बननेकी इच्छा करनेवाले (मा) मुझको (त्वक्षीयसा वयसा) बल-वर्धक अन्नसे (उन्ममंद) उन्नत करे । (घृणी) धूपसे तपाहुआ (छायां इव) जिसप्रकार छायाको प्राप्त करता है, उसप्रकार मैं (अ-रपाः)निर्दोष बनकर (रुद्रस्य सुम्नं) वैद्य के सुमतिको (अशीय) प्राप्त करता हूं, और तदनुसार (आ वि वासेयं[2]) समय व्यतीत करता हूं ॥

भावार्थ—शक्तिमान बननेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको वैद्य योग्य अन्नके पथ्यसे समर्थ बनावे । धूपसे तपाहुआ मनुष्य छायामें जाता है,

---

(१) **मना**—Pride घमंड । मन्-अपनी मान्यताका ही विचार करना ।

(२) **विवास**—घरसे बाहर रहना. प्रवासमें जाना, भ्रमण करना, समय व्यतीत करना ।

क्व१स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो
जलाषः ॥ अपभर्ता रपसो दैव्यस्याऽभी नु
मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ७ ॥
प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुति-
मीरयामि ॥ नमस्या कल्मलीकिनं नमोभि-
र्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥

उसीप्रकार रोगोंसे क्लेशित मनुष्य वैद्यका आश्रय करता है। प्रत्येक मनुष्य निर्दोष बने और वैद्यकी संमतिसे व्यवहार करे ॥

अर्थ—हे (वृषभ रुद्र) बलवान वैद्य ! (ते) तेरा (मुळयाकुः स्यः) सुखदायक और शुद्धिकारक (हस्तः) हाथ (क्व) कहां है (यः) जो (भेषजः) औषधिरूप और (जलाषः) शांतिकारक (अस्ति) है। (दैव्यस्य रपसः) इंद्रियजन्य दोषोंको (अप भर्ता) दूर करनेवाला तू (नु) निश्चयसे (मा) मुझे (अभि चक्षमीथाः) ठीक कर ।

भावार्थ—इंद्रियोंके स्वाभाविक दोषोंको दूर करनेवाले वैद्यके हाथमें हि सब औषधियां और शांतिदायक गुण होते हैं, जिससे शुद्धता, सुख और शांति प्राप्त हो सकती है । मानसिक (Mental healing) चिकित्सा करनेवाले वैद्यमें ये गुण होते हैं।

अर्थ—सबका (बभ्रवे) धारणपोषण कर्ता (वृषभाय) बलिष्ठ, (श्वीतीचे) तेजस्वी परमेश्वर के लिये (महः महीं सुष्टुतिं) अत्यंत महान उत्तम स्तुति (प्र ईरयामि) प्रेरित करता हुं। (कल्मलीकिनं) तेजस्वी के लिये (नमोभिः) नमस्कारों द्वारा (नमस्य) नमन करो। (रुद्रस्य) दुःखनाशक रुद्रका (त्वेषं नाम) तेजस्वी नाम (गृणीमसि) लेता हूं।

भावार्थ—सच्चा वैद्य परमेश्वर हि है । वह हि सबका धारणपोषण करनेवाला, और सबको आरोग्य देनेवाला है । उसी शक्तिमान तेजस्वी

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ॥ ईशानादस्य भुवनस्य भूरे-र्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥ ९ ॥

अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ॥ अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥ १० ॥

परमात्माकी प्रशंसा करना योग्य है। और उसीकी नम्रतासे उपासना करना उचित है। और उसीके नाम का मनन करना उचित है।

अर्थ—(स्थिरेभिः अंगैः) स्थिर अवयवोंसे युक्त, (पुरुरूपः) सर्व-व्यापक, (उग्रः) शूर और (बभ्रुः) भरण पोषण करनेवाला ईश्वर (शुक्रेभिः हिरण्यैः) शुद्ध तेजोंसे (पिपिशे) शोभता है। (अस्य) इस (भूरेः भुवनस्य) महान जगतके (ईशानात् रुद्रात्) स्वामी रुद्रसे कोई भी (असु-र्यं) दैवी शक्ति (न वा योषत्) पृथक् नहीं कर सकता।

भावार्थ—सब जगतका आरोग्यदाता ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्व-व्यापक, तेजस्वी और पोषक है। उसकी सब शक्ति सदा उसके साथ रहती है। कबी भी उससे पृथक् नहीं होती।

अर्थ—हे (रुद्र) दुःखनाशक परमेश्वर ! तू (अर्हन्) योग्य होनेके कारण (सायकानि धन्व च) बाण और धनुष्य (बिभर्षि) धारण करता है। तूं (अर्हन्) योग्य होनेके कारण (निष्कं) तेजस्वी (यजतं) पूज्य और (विश्व-रूपं) सर्वव्यापक भाव धारण करता है। तूं (अर्हन्) योग्य होनेके कारण (अभ्वं विश्वं) विशाल विश्वपर (दयसे) दया करता है। (त्वत्) तेरेसे कोई भी (ओजीयः) अधिक शक्तिमान (न वा अस्ति) नहीं है ॥

भावार्थ—ईश्वर सबप्रकारसे योग्य है इसलिये दुष्टोंको दमन करनेकी शक्ति धारण करता है तथा वह हि सबपर योग्य दया कर सकता है। क्यों कि वह तेजस्वी, पूज्य, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है ॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ॥ मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥ ११ ॥

कुमारश्चित्पितरं वंदमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ॥ भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥ १२ ॥

अर्थ—(गर्त-सदं) हृदयनिवासी (युवानं) जवान (श्रुतं) ज्ञानी (मृगं) धूंडनेयोग्य परमात्माकी (स्तुहि) प्रशंसा करो । उसको वैसा धूंडो कि (न) जैसा शिकारी लोक (उपहत्नुं) हिंसक (भीमं) भयंकर (उग्रं) उग्र (मृगं) सिंहआदि पशुको गुहामें धूंडते हैं। हे (रुद्र) दुःखनाशक ईश्वर । (स्तवानः) प्रशंसित तू (जरित्रे मृळ) प्रशंसाकर्ताको सुखी करो । (ते सेनाः) तेरा बल (अस्मत् अन्यं) हमसब आस्तिकोंसे भिन्न (अन्यं) दूसरोंपर (निवपन्तु) हमला करे ॥

भावार्थ—जिसप्रकार सिकारी लोक हिंस्रपशुको तन्मय होकर गुहाओंमें धूंडते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर को अपनी हृदयकी गुहामें धूंडना चाहिए। जो परमात्माको अपने हृदयमें धूंडता है और उसकी शक्तियोंका चिंतन करता है उस आस्तिक का कल्याण होता है । अन्य नास्तिक नष्ट होते हैं ॥

अर्थ—हे (रुद्र) दुःखनाशक ! (कुमारः चित्) जिस प्रकार लडका (उपयन्तं पितरं) पास आनेवाले पिताको नमन करता है, उसप्रकार (वंदमानं) वंदनीय तुझको मैं (प्रतिननाम) नमन करता हुं । तथा (भूरेः दातारं) अधिक दान करनेवाले, (सत्पतिं) उत्तम स्वामीकी (गृणीषे) मैं प्रशंसा करता हुं । (स्तुतः त्वं) प्रशंसित तू (अस्मे) हमसबके लिये (भेषजा रासि) औषधियां देता है ॥

भावार्थ—जिसप्रकार लडका प्रेमसे बापके पास जाता है उसप्रकार भक्तिसे हमसबको ईश्वरकी उपासना करना चाहिए। क्यों कि उसकी

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा
वृषणो या मयोभु ॥ यानि मनुरवृणीता पिता
नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥ १३ ॥

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य
दुर्मतिर्मही गात् ॥ अव स्थिरा मघवद्भ्यस्त-
नुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥ १४ ॥

शक्तिका चिंतन करनेसे अपने दोष दूर करनेका सामर्थ्य उपासकोंको प्राप्त होता है ॥

अर्थ–हे (वृषणः मरुतः) हे बलवान प्राणो ! (वः) आपके (या शुचीनि भेषजा) जो शुद्ध औषध हैं तथा जो (या शंतमा) शांतिकारक और (या मयो-भु) जो रोगप्रतिबंधक हैं । (यानि) जो (नः पिता मनुः) हमसबके पालक मनुष्यनें (अवृणीत) स्वीकार कीं थीं (रुद्रस्य ता) दुःखनाशक के वे औषध (शं च योः च) शांति और रोगप्रतिबंध के लिये (वश्मि) वशमें रखना चाहता हुं ॥

भावार्थ—जो औषधियां शुद्ध, शांतिकारक, रोगप्रतिबंधक, मनको ठीक रखनेवालीं तथा शरीरका आरोग्य ठीक रखनेवालीं हों उनही का सेवन करना चाहिए । परमेश्वर की कृपासे ऐसीं अनंत औषधियां हैं ॥

अर्थ—हे (मीढ्वः) उदार ! (त्वेषस्य) तेजस्वी (रुद्रस्य हेतिः) रुद्रके हथियार (नः) हमसबसे (परि वृज्याः) दूर रखो । (मही दुर्मतिः) बडी दुर्बुद्धि हमसबसे (परि अगात्) दूर होवे । (मघवद्भ्यः) धनवानोंके लिये (स्थिरा) स्थिरता (अवतनुष्व) देओ । तथा (तोकाय तनयाय) बालबच्चोंके लिये (मृळ) सुख देओ ॥

भावार्थ—हमारे आचार ऐसे उत्तम होवें कि जिससे परमेश्वर के दण्ड सदा हमसबसे दूर रहें । सब प्रकारका बुरा विचार हम सबसे सदा दूर रहे । धनवानों में चंचलता न रहे तथा सबको सुख प्राप्त होवे ॥

एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे
न हंसि ॥ हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम
विदथे सुवीराः ॥ १५ ॥

अर्थ—हे (बभ्रो) धारणपोषणकर्ता, (वृषभ) बलवान्, (चेकितान) ज्ञानी, (हवनश्रुत्) प्रार्थना श्रवण करनेवाले (रुद्र देव) दुःखनिवारक ईश्वर ! (यथा) जिसप्रकार (न हृणीषे) तुम क्रोधित न होओगे और (न हंसि) हनन न करोगे उस प्रकार हमसबको (इह) यहां (बोधि) ज्ञान दो । (विदथे) युद्धमें (सु-वीराः) उत्तम शूर बनकर (बृहत् वदेम) बहुत उत्साहपूर्ण भाषण करेंगे ॥

भावार्थ—ईश्वर सबका पोषक, शक्तिमान, ज्ञानी और दुःखनिवारक है। जिसप्रकार उसका क्रोध नहीं होगा उसप्रकार सब मनुष्योंको आचरण करना चाहिए। ज्ञान प्राप्त करके जीवनयुद्धमें शूरता के साथ कार्य करना चाहिए ॥

(३) रुद्र-सूक्त ।

ऋ. २।३३ रुद्र सूक्त की व्याख्या ।

मंत्र १

सूर्यप्रकाश और आरोग्य ।

"सूर्यके उत्तम प्रकाशसे कोई भी मनुष्य आदि प्राणी वंचित न होवे।" यह आशय इस मंत्रमें कहा है। सूर्य के प्रकाशका आरोग्यके साथ नित्य संबंध है। सूर्यका प्रकाश 'शोचिष्केश' अर्थात् सबको शुद्ध करनेवाला है। सर्वत्र शुद्धता करनेके कारण सूर्यप्रकाशसे सबको आरोग्य प्राप्त हो सकता है। परंतु जो मनुष्य सूर्यप्रकाशमें नहीं भ्रमण करते उनको उतना आरोग्य नहीं मिलता, कि जितना सूर्यप्रकाशका सेवन करनेवालोंको प्राप्त हो सकता है। इसलिये अथर्ववेदमें कहा है कि—

दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ॥

अथर्व. १४।२।३९

दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥

अथर्व १४।१।४७

१४।२।७५

"सूर्य के कारण आप सबको दीर्घ आयु प्राप्त होवे।" सूर्य हि सबको दीर्घ आयु देनेवाला है। इसलिये कहा है। कि—

प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥

प्रश्न. उप. १।७

आदित्यो ह वै प्राणः ॥

प्रश्न. उप. १।५

यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान्
रश्मिषु संनिधत्ते ॥ प्र. उ. १।६

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राणः ॥ प्र. उ. ३।८

"यह सूर्य प्रजाओंका प्राण है ? निश्चयसे आदित्य ही प्राण है । जब सूर्य सबको प्रकाशित करता है तब वह सब प्रकारके प्राणोंको किरणोंमें स्थापन करता है । आदित्य बाहरका प्राण है ।" इत्यादि प्रकार सूर्य प्राण होनेके विषयमें उपनिषदोंमें लिखा है । दीर्घ आयुका प्राण के साथ अत्यंत संबंध है, क्यों कि जबतक प्राण रहेगा तबतक हि आयु रह सकती है । इसकारण कहा है कि—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥

ऋ. १।११५।१; अथर्व. १३।२।३५; २०।१०७।१४
वा. यजु. ७।४२; १३।४; तै.सं. १।४।४३।१

"सूर्य स्थावर जंगम अर्थात् सब जगतका आत्मा है ।" इसप्रकार वेदमें सूर्यका तथा सूर्यप्रकाशका महत्व वर्णन किया है । इसीलिये योगी लोक सूर्यप्रकाशमें अथवा वृक्षकी छायामें बैठकर दोप्रहरके समय प्राणायाम करते हैं, और सूर्यप्रकाशद्वारा जो प्राण वायुमें स्थापन किया जाता है, उसको अपने अंदर लेते हैं । सूर्योदयमें तथा सूर्यके अस्तके समय प्राणायाम करने का यह ही मुख्य हेतु है । सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय सूर्यके सन्मुख बैठकर उसके किरणोंद्वारा प्राणमय बनेहुए वायुको प्राणायामद्वारा अंदर लेनेसे एक प्रकारका बडाही उत्साह प्राप्त होता है । जहां सूर्यप्रकाश नहीं आता ऐसे स्थानमें बैठकर प्राणायाम करनेसे वैसा उत्साह नहीं प्राप्त होता, कि जैसा सूर्यप्रकाशमें प्राणायाम करनेसे प्राप्त होता है । इस विषयका अधिक विचार 'प्राणायाम" नामक पुस्तकमें किया है वहां पाठक देख सकते हैं । तथा "मानवी आयुष्य" नामक पुस्तकमें आयुका सूर्यप्रकाशके साथ संबंध वर्णन किया है । पाठक उस प्रसंग को वहांहि देख लें । इस प्रकार सूर्यप्रकाशका आरोग्य के साथ संबंध है; इसीलिये इस मंत्रमें कहा है कि—

नः सूर्यस्य संदृशः मा युयोथाः ॥

ऋ. २।३३।१

(Exclude us not from looking on the sunlight.)

म. ग्रिफिथ साहेब इस प्रकार भाषांतर करते हैं। 'सूर्यप्रकाशसे हम कभी पृथक् न होवें।' यह इच्छा इस मंत्रमें प्रधान है। इस वेदके उपदेश के साथ आजकलके हमारे रहने सहनेका पाठक अवश्य विचार करें। तंग मोहोल्लोंके तंग गलियोंमें तंग मकानोंके तंग कमरोंमें रहनेवाले लोक खानेपीनेके तंगीके साथ अपनी आयु किस प्रकार नष्ट कर रहे हैं, इसका विचार पाठक स्वयं कर सकते हैं। कितनाभी अच्छा मकान हो उसमें रहना सूर्यप्रकाश से वंचित होनेके कारण रोगकारक हि है। वृक्षके नीचे रहनेवालों की अपेक्षा गृहोंमें रहनेवाले मनुष्योंकी आयु कम होती है। फिर तंग मकानों में रहनेसे अल्प आयु होती है यह सिद्ध करनेकी क्या आवश्यकता है? इसीलिये 'गृह' का नाम 'क्षय' ऐसा हि वेदमें कहा है। क्यों कि घरोंमें रहनेके कारण मनुष्योंके आयुका 'क्षय' होता है।

परंतु गृहोंके विना रहना सभ्य मनुष्योंकेलिये सब कालमें असंभव है। इसलिये गृहोंकी बनावट इसप्रकार करना चाहिए, कि जिससे शुद्ध हवा तथा सूर्यप्रकाश घरोंमें विशेष प्रकार प्राप्त हो सके। तथा दिनमें थोडा समय सूर्यप्रकाशमें अवश्य विचरना चाहिए। जिससे मनुष्योंको आरोग्य, आयु और बल अवश्य प्राप्त हो सकेगा।

इस मंत्रके उत्तरार्धमें 'अर्वत्' शब्द विशेष महत्व रखता है। इसका-अर्थ–Low नीचा, छोटा, कमीना; inferior निकृष्ट, हीन; vile पाजी, निकम्मा, अधम, बिघडाहुआ मनुष्य, नीच मनुष्य। 'हमारे शूर पुरुष अधम दुष्ट मनुष्यों को दबाकर रखें,' अर्थात् उनको उठने न दें। मनुष्यके अंदर कमीने नीचभाव को कभी प्रबल होने नही देना चाहिए। उसीप्रकार समाजमें दुष्टोंका प्राबल्य होनेसे बडे कष्ट होते हैं। इसीकारण दुराचार बढता है। और बीमारी भी बढती है और आयु क्षीण होती है।

(१) श्रेष्ठोंसे सुविचार प्राप्त करना, (२) दुराचार तथा दुष्ट मनुष्योंको दूर रखना, (३) सूर्यप्रकाशसे वंचित न होना, ये तीन भाव इस मंत्रमें कहे हैं, इनके कारण नीरोगता प्राप्त होती है और प्रजाओंके साथ सबकी वृद्धि होती है।

मंत्र २

औषधिसेवन से सौ वर्षकी आयु ।

इस द्वितीय मंत्रके पूर्वार्धमें "शांति देनेवाले वनस्पतियोंके सेवनसे सौ वर्षकी आयु प्राप्त होती है।" ऐसा भाव आता है। प्रथम मंत्रके अनुकूल आचरण करनेके पश्चात् औषधि सेवन लिखा है। अर्थात् सूर्यप्रकाशके अभाव में केवल औषधिसेवनसे आरोग्यवर्धन होना असंभव प्रतीत होता है। प्रयत्न करनेसे आयु बढ सकती है, यह भी यहां भाव स्पष्ट है। अन्यथा औषधियोंसे सौ वर्षकी आयु प्राप्त होना असंभव होगा। इसलिये वैदिक धर्मियोंको चाहिए कि वे अपनी आयु बढानेका सदा यत्न करें। अपनी आयु निश्चितहि है ऐसे भ्रममें कभी न फसें। आयु निश्चित नहीं है धर्माचरणसे आयुकी वृद्धि होती है और दुराचारसे आयु घट जाती है।

मनकी पवित्रतासे आरोग्यप्राप्ति ।

इसीकारण इस मंत्रके उत्तरार्धमें कहा है कि, "हम सबसे द्वेषभाव, पापविकार तथा रोग होनेकी परिस्थिति दूर करो।" द्वेषभाव तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या आदि जितने बुरे भाव हैं, उन सबसे मन अवनत होता है। मनके बुरे होनेसे विचार बिघड जाते हैं विचार बिघडनेसे आचार बिघडता है, जिससे रोग होते है, और अल्प आयु होती है। इसलिये स्वास्थ्य की रक्षा करनेवालोंको चाहिए कि वे आपना मन शुद्ध करें और विचारोंको पवित्र बनावें। यह हि आरोग्य की कूंजी है। विचारोंके अशुद्ध होते हुए आरोग्य और दीर्घ आयुष्य प्राप्त होना असंभव है।

मंत्र ३

बुरे विचार और रोग ।

इस तृतीय मंत्रमें (१) 'अंहः' और (२) 'रपसो अभीतीः' ये दो शब्द मुख्य हैं। इनके अर्थ देखीए:—

(१) अंहः—Anxiety चिंता, उद्वेग, मनस्ताप; distress आपत्ति, संकट; trouble दुःख, कष्ट; sin पाप, दोष, अपराध, दुराचार; perplexity उलझाना, घबराहट; pressure दबाव, दूसरेके नीचे दबजाना, बेवस होना, पराधीनता के कारण दबजाना ।

(२) रपसः अभीतीः ।—'रपस्' का अर्थ—Bodily defect शरीरकी न्यूनता, दोष शारीरिक हीनता; disease रोग, बीमारी; infirmity पीडा, कष्ट, दुर्बलता । 'अभीती' (अभि इति)—आक्रमण, हमला । 'रपसो अभीतीः'—शरीरके अवयवों में व्यंग होना, शरीरकी क्षीणता होना, बीमारी से शरीरको पीडा होना, शारीरिक कष्ट होना, क्षीणता अथवा निर्बलताको प्राप्त होना ।

उक्त दोनों बातोंका परस्पर अत्यंत घनिष्ट संबंध है । चिंता, उद्वेग आदिसे मन निर्बल होता है और मनकी निर्बलता के कारण शरीरमें व्याधि बढते हैं । क्रोधआदि कारण मन का संताप होनेसे नाना प्रकारके रोग होते हैं । कुटुंबके ऊपर आपत्ति आनेसे मन श्रांत और कमजोर होता है, इससे भी व्याधिका जोर होता है । पाप, दोष, अपराध, दुराचार-आदिके कारण भी अनेक व्याधियां बढतीं हैं । मनकी अत्यंत घबराहट होनेसे क्षणमात्रमें मृत्यु भी आता है, फिर अन्य छोटे मोटे रोग होना कोई असंभव नहीं है । परतंत्रता, स्वाधीनताका अभाव आदि आपत्तिसे तथा दूसरेके दबावमें रहनेके कारण मनको अशक्तता आती है, जिससे विविध बीमारियां होतीं हैं । उक्त दोनों शब्दोंके अर्थोंका परस्परसंबंध देखकर पाठक अधिक विचार कर सकते हैं । मनके कमजोरीसे व्याधिओंका होना यहां सूचित किया है । इससे सिद्ध है कि यदि मन बलवान होगा तो व्याधि कम हो सकते हैं ।

वैद्यको चाहिए कि वह 'मानसशास्त्र' का उचित अध्ययन करे और उस ज्ञान के साथ औषधिविज्ञानको मिलाकर रोगीकी चिकित्सा करे । क्यों कि सब रोगोंकी जड मनके दोषोंमें होती है । मन में जबतक दोष रहेगा तबतक किसीनकिसी रोगकी पीडा अवश्य रहेगी ।

इसलिये वैद्य सुविचार फैलानेवाला चाहिए । तथा पापभाव और बुरे

भावोंको दूर करना भी वैद्यका कर्म है। लोक भी अपने मनकी शुद्धता करके आरोग्य को प्राप्त करें। सब स्वास्थ्यका मूल "**मानसिक शुद्धता और दृढता**" में है॥

मंत्र ४

मिथ्या प्रशंसा न करो।

किसीकी भी मिथ्या अर्थात् अवास्तविक प्रशंसा करना बहुत बुरा होता है। जो वास्तविक गुण होंगे उनका वर्णन करना ठीक होता है। परंतु अवास्तविक मिथ्या स्तुति करना, दोनोंकेलिये अवनतिकारक होता है। मिथ्या स्तुति करनेसे स्तुतिपाठक का मन नीच हो जाता है, उसी प्रकार जो उस मिथ्या स्तुतिको सुनता है वह भी गिर जाता है।

(१) वारंवार नम्रता बताना, सदा 'हांजी, हांजी' करना, 'जो हुकम' हि सदा बोलना; (२) मिथ्या प्रशंसा करना, दुष्टों की प्रशंसा स्वार्थ-साधन करने के लिये करना; (३) दूसरे की सहायता वारंवार लेना, अपने कार्य करने के लिये वारंवार दूसरोंको पुकारना; ये तीनों बातें अवनतिकारक हैं। इसलिये चतुर्थ मंत्रके प्रथमार्धमें इनका निषेध किया है। उक्त बातें करनेसे 'रुद्र' की अप्रसन्नता होती है ऐसा इस मंत्रमें स्पष्ट कहा है। (१) योग्य रीतीसे श्रेष्ठोंको नमन करना, (२) गुणोंका यथार्थ वर्णन करना, (३) और स्वावलंबन करना, ये तीन प्रकार अच्छे हैं। यह आशय पूर्वार्धका है।

वीर, बालबच्चे, तथा अन्य मनुष्योंके आरोग्यविषयक संमति श्रेष्ठसे श्रेष्ठ वैद्यसे लेना चाहिए। अज्ञानी अशिक्षित वैद्योंकी बातोंमें कभी फंसना नहीं।

'भिषजां भिषक्तमः' (वैद्योंमें वैद्य) यह नाम जैसा श्रेष्ठ वैद्यका वाचक है उसीप्रकार परमेश्वर का भी वाचक है, क्योंकि परमात्माही सबसे श्रेष्ठ चिकित्सक तथा दुःखों और रोगोंका नाशक है। इसका वर्णन मंत्र ९ में देखीए॥

मंत्र ५

घमंड छोड दो ।

इस मंत्रके उत्तरार्ध में 'घमंडके कारण हम सब का नाश न हो' ऐसी प्रार्थना है । साधारणतः मनुष्यको अपनी विचारशक्तिकी घमंड होती है और इस घमंड के कारण वह दूसरेके सत्य उपदेशकी ओर भी ध्यान नहीं देता, जिससे उनके चालचलनमें प्रमाद होते हैं, और प्रमादोंके कारण नाश होता है । इसलिये सबको उचित है कि वे कभी घमंडके कारण अपना नाश न करें ।

पचनशक्ति की घमंडसे मनुष्य बहुत खाता है और अपचन के कारण बीमार होता है, कार्य करनेके सामर्थ्यकी घमंड होनेसे मनुष्य बहुत उद्योग करता है और अतिपरिश्रमसे रोगी बन जाता है । इसी प्रकार अन्य अवस्थाओंमें घमंड होनेसे बहुत हानी होती है, इसलिये घमंड छोड-ना चाहिए ।

'मना' शब्द यहां घमंड बताता है । इस शब्दके अन्य अर्थ निम्नप्रकार होते हैं—Envy द्वेष करना, दूसरेकी उन्नति न देख सकना, दूसरेको बढा देखकर जलना; jealousy ईर्षा, शंका, संशय, स्पर्धासे जलन, दूसरेका अभ्युदय देख कर उद्वेग होना ।

उक्त भाव भी बहुत बुरे हैं । इन दुष्ट भावोंके कारण मनुष्यका मन अधोगतिको प्राप्त होता है । और मन नीच होनेसे सब आपत्ति आती है ।

इस मंत्रके पूर्वार्धमें योग्य वैद्यकी प्रशंसा करना तथा उसको दान करना ये भाव स्पष्ट हैं । जिसके उपदेशके अनुसार चलनेसे मनुष्य नीरोग होते हैं उसकी प्रशंसा करना चाहिए ।

मंत्र ६

नाथ बननेकी इच्छा करो ।

'नाथ् और नाध्' धातुके अर्थ—To be master नाथ होना, स्वामी

बनना; to bless आशीर्वाद देना; to ask पूछना, मांगना; to harass सताना, तंग करना, थकाना। 'नाथृ नाधृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु।' याचना, कष्ट प्रभुत्व, और आशीर्वाद ये चार अर्थ इन दो धातुओंके हैं ऐसा पाणिनी मुनीनें कहा है।

'नाधमान' का यहां अर्थ 'नाथ बनना, स्वामी बनना' है। जो श्रेष्ठ बनना चाहता है वह बलवानके पास चला जावे और उसकी शिक्षासे श्रेष्ठ बने।

जिसप्रकार सूर्य की तेज धूपसे तपा हुआ मनुष्य शांत होने के लिये वृक्षकी छायामें जाता है, उसीप्रकार बीमारियों के कष्टोंसें संतप्त हुआ रोगी श्रेष्ठ वैद्यकी प्रेमळ संमतिके आश्रयमें जाकर आरामप्राप्त करता है।

'त्वक्षीयस्' का अर्थ—Very vigorous अत्यंत बलवान।

'वयस्' का अर्थ—Enjoyment भोग; food अन्न; energy शक्ति, उत्साह; strength बल; health आरोग्य, स्वास्थ्य; vigorous age उत्साही आयु, तारुण्य, जवानी; prime of life आयुष्यका मुख्य भाग।

ये दोशब्द इस मंत्रमें विशेष मनन करने योग्य हैं। 'उत्साह पूर्ण आयु और आरोग्य' प्राप्त करनेकी सूचना इन शब्दोंसे प्राप्त होती है।

'अ-रपाः' अर्थात् 'दोषोंको दूर करनेसे स्वास्थ्य की प्राप्ति' होती है। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नागरिक तथा अन्य सब प्रकारके दोष दूर करना चाहिए। जहां दोष रहेंगे वहां क्लेश अवश्य होंगे। निर्दोष जीवनसे उन्नति और सदोष जीवनसे अधोगति होती है। पाठकोंको चाहिए कि वे इस मंत्रका विशेष विचार करें और स्वयं निर्दोषी बनकर दूसरोंको निर्दोष बननेमें सहायता देवें।

शरीर निर्मल रखना, प्रत्येक इंद्रिय शुद्ध बनाना, मन बुद्धि पवित्र करना, कपडेलत्ते स्वच्छ रखने, घरकी निर्मलता करना, गली मोहोल्ला तथा नगर को शुद्ध, निर्मल तथा पवित्र बनाना, तथा सर्वत्र पवित्रता रखनेसे रोग कम हो जाते हैं। मलोंकी वृद्धिके कारण रोगों की वृद्धि होती है। इसी प्रकार अन्य कष्टोंके विषयमें जानना उचित है। (रपः) न्यूनताओंको दूर करने से सब कष्ट दूर होते हैं।

'सु-म्नं' अर्थात् शोभन मन, सुमन, उत्तम विचार करनेकी शक्ति को प्राप्त करना चाहिए । विचार उत्तम प्रकारसे करनेवाला अपनी परीक्षा करता है, अपनी परीक्षा करनेसे अपने दोष ज्ञात होते हैं और पुरुषार्थ-से उनको दूर किया जा सकता है ।

मंत्र ७

इंद्रियोंके दोषोंको दूर करना ।

'दैव्यस्य रपसः अपभर्ता' अर्थात् 'इंद्रियोंकी न्यूनताओं को दूर करनेवाला,' ये शब्द इस मंत्रमें विशेष हैं । 'दैव्य' अर्थात् इंद्रियोंके संबंधसे उत्पन्न होनेवाले (रपसः) दोष दूर करना चाहिए । देव तथा दिव्य आदि शब्दोंका भाव निम्न कोष्टकसे ज्ञात हो सकता है:—

वैदिक शब्द	व्यक्तिगत भाव	सामाजिक भाव	जगतमें भाव
देव देवता दैवत	इंद्रिय-शारीरिक व्यवहारके साधक अवयव	विद्वान्, शूर, व्यो-पारी, कारीगर–राष्ट्रीयव्यवहारके साधक लोक	अग्नि, सूर्य, मरुत् विश्वेदेव आदिदेव जो सब जगतका व्यवहार चलाते हैं
देव-लोक दिव्य-लोक	इंद्रियोंके स्थान (मस्तिष्क आदि)	विद्वान् आदिकों-का स्थान (विद्वत्सभा)	सूर्यादिकोंका स्थान
दिव्य दैव्य	इंद्रियसंबंधी	विद्वानादिसंबंधी	सूर्यादिसंबंधी
दैव्यं रपः	इंद्रियोंका दोष	विद्वान शूर आदि-कोंके दोष ।	वायुजल आदिकों-के दोष ।

'दैव्यस्य रपसः।' का भाव इस कोष्टकसे पता लग सकता है। व्यक्तिमें इंद्रियोंके दोष अस्वास्थ्य उत्पन्न करते हैं, राष्ट्रमें विद्वान्, शूर, व्योपारी तथा कारीगरोंकी न्यूनताओंके कारण अशांति होती है, तथा जगतमें जलवायु आदिके दोषोंसे बिघाड होता है। इसप्रकार 'दैव्य रपः'को दूर करनेका आशय क्या है, और इसका महत्व कितना है, इसका विचार पाठक कर सकते हैं।

'मृळयाकुः स्यः हस्तः' अर्थात् 'सुखदायक शोधक हाथ' मानसिक चिकित्सा (Mental healer) करनेवाले वैद्यका होता है। जिसके हाथके अंगुलियोंद्वारा मानसिक विद्युच्छक्तिका रोगीके शरीरमें प्रवेश होकर वहां आरोग्यकी स्थापना की जाती है। पूर्वोक्त रुद्रसूक्त (ऋ.१।४३ मं. ४) की व्याख्यामें 'गाधपति' शब्दका विवरण करते हुए "दश शाखोंवाले तथा नीरोगता प्राप्त करानेवाले दोनों हाथोंसे स्पर्श करता हूं।' (ऋ.१०।१३७। ७) इस आशयका मंत्र पूर्व स्थलमें दिया है। पाठक उस मंत्रको यहां अवश्य देखें। (मृळयाकुः स्यः हस्तः) 'सुख देनेवाले हाथ' का तात्पर्य उसी मंत्रके विचारसे ज्ञात होसकता है। (१) मनकी प्रेरणा (२) वाणीसे शब्द योजना और (३) प्रेमयुक्त हस्तका स्पर्श, इन तीनोंके योगसे बीमारके मनके उपर विशेष परिणाम होकर आरोग्य प्राप्त होता है।

'हस्तः यो अस्ति भेषजो जलाषः' अर्थात् 'हाथ कि जो औषधरूप और जलरूप है।' इसमंत्रका भाषांतर म. मूर साहेब निम्न प्रकार करते हैं 'That gracious hand which is healing and restorative' वह प्रेममय हाथ कि जो आरोग्यदायक और रोगनिवारक है (डा० मूरका O. S. Texts page 308 Vol. IV) म. ग्रिफिथका भाषांतर— 'The hand that giveth health and bringeth comfort.' (वह हाथ कि जो आरोग्य और सुख देता है। ऋ. २।३३।७) म. ग्रिफिथ साहब के भाषांतर की अपेक्षा म. मूर साहबका भाषांतर अच्छा है। Giveth और bringeth' ये शब्द कल्पित हैं, इससे म. मूर साहेब का 'is' शब्द बिलकुल ठीक है क्योंकि वह 'अस्ति'शब्दकाहि योग्य भाषांतर है।

‘ हाथहि औषध है और शांतिदायक है’ यह इस मंत्रका भाव है। यहां औषध देनेसे नीरोगता और शांति नहीं बताई परंतु (१) औषध देनेसे (२) तथा जलचिकित्सासे जो कार्य होता है, वहहि (३) केवल हस्त-प्रयोगसे आरोग्य प्राप्त होता है ऐसा कहा है । यह इस मंत्रका भाव ध्यानपूर्वक विचार करने योग्य है ।

इस मंत्रमें ‘भेषजः’ शब्दसे औषधियोंसे चिकित्सा करने का भाव तथा ‘जलाषः’ शब्दसे जलसे चिकित्सा करने का भाव ज्ञात होता है। ये चिकित्साओंके दोनों प्रकार ‘मानसिक शक्तिसे चिकित्सा करनेवालों के हाथमें रहते हैं’ यह हि इस मंत्रद्वारा बताया गया है ।

‘दैव्यं रपः’ अर्थात् इंद्रियजन्य दोष दूर करनेके लिये ‘मानसचिकित्सा’ ही श्रेष्ठ है इसमें कोई संदेह नहीं। इस समयतक जो विचार हुआ है उससे निम्न कोष्टक तैयार किया है जिससे पूर्वोक्त शब्दोंका भाव ध्यानमें आजायगा ।—

(दिव्य) रुद्र (वैद्य)
A Healer

रुद्रियं
(रोग दूर करनेकी शक्ति)
Healing power

गाथ-पति (मानस-चिकित्सक) Mental healer	मेथ-पति (भेषज-चिकित्सक) Allopathist	जलाष-भेषज (जल-चिकित्सक) Hydropathist
मानसचिकित्सा Mental healing	भैषज्यचिकित्सा Medicinal healing	जलचिकित्सा Healing by water
मृळयाकुः हस्तः (सुखदायक हाथ)	वार्याणि भेषजानि (रोगनिवारक औषध)	जलाषेण अभिषिंचत । (जलसे अभिषेक करो)
हस्तः भेषजः जलाषः (हाथहि औषध और शांतिदायक है)	हस्ते वार्याणि भेषजानि बिभ्रत् । (हाथमें निवारक औषध धारण करनेवाला)	जलाषेण उपर्षिंचत । (जलका शरीरपर प्रयोग करो)
हस्तप्रयोग	औषधिप्रयोग	जलप्रयोग

इस कोष्टक से पूर्वोक्त सब विवरणका तात्पर्य ज्ञात हो सकता है और चिकित्साके तीनों प्रयोगोंकी सूचना स्पष्टतासे विदित हो सकती है। सबमें इंद्रियजन्य दोषोंको दूर करनाही मुख्य है। निम्न कोष्टक से किसको दूर करना और किस को पास करना इस विषयका बोध हो सकता है।—

पास करना।	दूर करना।
(१) प्रचेतस्–उत्तम ज्ञान	(१) दैव्यं हेळः–इंद्रियजन्य दोष।
(२) तव्यस्–शक्ति, बल	(२) दैव्यं रपः–इंद्रिय विषयक न्यूनता।
(३) शंतमं–शांति	(३) वधः–मृत्यु, अपमृत्यु
शं– "	(४) मना–घमंड, दोष,
(४) योः–निवारक शक्ति	(५) अर्वेत्–नीच, कमीनापन
(५) शुक्रं–वीर्य	(६) द्वेषः–द्वेष, दुश्मनी
(६) सुगं–उत्तम हलचल	(७) अंहः–बुरा भाव, पाप
(७) पुष्टं–पुष्टि	(८) अमीवः–रोग
(८) अनातुरं–स्वास्थ्य	(९) रपसः अभीतीः–दोषों का हमला
(९) मयः–नीरोगता	(१०) दुष्टुतीः–मिथ्या प्रशंसा
(१०) शर्म–सुख	
(११) वर्म–दुःखनिवारण	
(१२) छर्दिः–दोष दूर करनेकी शक्ति	
(१३) सूर्यस्य संदृशः–सूर्यदर्शन, प्रकाश	
(१४) शतं हिमाः–सौ वर्ष की आयु	

इन शब्दोंका विशेष अर्थ पाठक स्थान स्थानपर देखते ही आये हैं। यहां केवल सूचना मात्रके लिये यह कोष्टक दिया है। इन सूक्तोंमें जो जो शब्द आगये हैं उनसे तात्पर्य निकालनेके लिये ये कोष्टक उचित सहायता दे सकते हैं। पाठकों को चाहिए कि वे इस प्रकार संगति लगाकर विशेष विचार करें और मंत्रोंका आशय समझें।

मंत्र ८

वैद्योंमें सच्चा वैद्य ।

वैद्यका कार्य दोषोंको दूर करके रोगोंका शमन करना और शांति प्रदान करना है । परमात्मा भी उपासकोंको सच्ची शांति प्रदान करता है और सब दोष दूर करता है इस कारण उनको 'अद्वितीय वैद्य' कहते हैं ।

इस सूक्तमें वैद्यका वर्णन होते होते एकदम परमेश्वरका वर्णन प्रारंभ हुआ है । यह देख कर कई पाठक शंका करेंगे, कि यह बिलकुल प्रसंगका आगे-पीछेका संबंध छोडकर वर्णन है । परंतु वास्तवमें देखा जायगा तो यहही वैदिक उपदेश की खूबी है । पहिले कहा जा चुका है कि आध्यात्मिक अर्थात् (Individual) वैयक्तिक, आधिभौतिक अर्थात् (Social) सामाजिक अथवा प्राणिविषयक, तथा आधिदैविक अर्थात् (Cosmic) सब जगत्के संबंधका उपदेश क्रमपूर्वक वेदमें आता है । रुद्रशब्दका तीनों स्थानोंमें जो जो अर्थ है उसका पूर्णतया विचार 'रुद्रदेवताका परिचय' नामक पुस्तकमें किया गया है। उसका थोडासा अंश साररूपसे यहां देता हूं ।—

(१) आध्यात्मिक रुद्र—दस प्रकारके प्राण, जीवनशक्ति, जो प्रत्येक प्राणिमात्रमें रहती है । और जिसके कारण प्राणी जीवित रहते हैं ।

(२) आधिभौतिक रुद्र—समाज अथवा जनताका स्वास्थ्य ठीक रखनेवाले वैद्य आदि जन, जो योग्य प्रबंधद्वारा सबका स्वास्थ्य ठीक रखने में सहायता देते हैं ।

(३) आधिदैविक रुद्र—बाह्यप्राण, प्राणवायु, ४९ प्रकारके वायु, सर्वव्यापक परमात्मा ।

व्यक्तिके शरीरमें, राष्ट्रके देहमें तथा जगतके ब्रह्मांड देहमें उक्त तीन रुद्र क्रमशः हैं । पूर्वोक्त रुद्रसूक्तोंमें व्यक्तिगत रुद्रका वर्णन नहीं है ।

ऋग्वे० रुद्र० ५

परंतु सामाजिक रुद्र अर्थात् वैद्यका वर्णन स्पष्ट है। राष्ट्रमें चिकित्सक (Healer) वैद्य होता है। प्रत्येक शुभगुण पूर्णतासे परमात्मामें है। वैद्यमें जो क्लेश दूर करनेका गुण है, वह ही परिपूर्णतासे परमात्मा में है। इस कारण आलंकारिक भाषासे 'वैद्योंका वैद्य' परमात्मा को कहा गया, तो कोई अवास्तविक बात नहीं हुई। (Divine Healer) दिव्य वैद्य अथवा सबके क्लेश सचमुच दूर करनेवाला परिपूर्ण दृष्टिसे 'परमात्मा' ही है। इस लिये रोग, दोष, क्लेश, दुःख अथवा आपत्ति दूर करनेवाले रुद्र के सूक्तमें प्रथम वैद्यका वर्णन होने के पश्चात् 'वैद्योंके वैद्यका' अर्थात् परमात्माका वर्णन आगया है, यह युक्तियुक्त है। हरएक शुभगुणकी पूर्णता परमात्मामें होनी है। इसलिये इस गुणकी भी पूर्णता इस सूक्तमें वेदनें परमात्माके अंदर बताई है। यह ही वेदकी बडी भारी अपूर्वता है।

प्रत्येक शुभ गुणको अलग देखना योग्य नहीं है। परंतु उसका संबंध परमात्माके साथ देखना ही योग्य है।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञताबीजम्॥

योगदर्शन।

"परमात्माके अंदर सर्व ज्ञानका बीज अत्यंत है।" इस श्री. पतंजली मुनीके कहनेका तात्पर्य स्पष्ट है कि जो ज्ञानादि शुभ गुण हैं वे सब परमात्मामें निरतिशय हैं। इस तात्विक बातको बताना ही वेदका परम उद्देश है। इसलिये अग्नि, रुद्र, आदित्य आदि देवोंके सूक्तोंसे व्यक्तिगत, समाजगत और विश्वगत गूढ तत्वोंका ज्ञान वेदनें दिया है, और जो जो शुभ गुण व्यक्तिमें दीखता है, वह परमात्मामें किस प्रकार देखना चाहिए, इसका स्पष्ट संबंध इस प्रकारके वर्णनोंद्वारा वेदमें व्यक्त किया है।

रुद्र का गुण 'रोग और क्लेश दूर करना' है। यह वैद्यमें अल्प है और परमात्मामें परिपूर्ण है। इस गुणकी दृष्टीसे यह वर्णन प्रसंगानुरूपहि है। प्रत्येक गुणका वर्णन करतेहुए उपासक को परमात्माकी ओर लेजानेका गुण जैसा वेदमें है वैसा किसी अन्य धर्मपुस्तकमें नहीं है। यह ही वेदकी अपूर्वता है। परमात्माही सब श्रेष्ठ गुणोंका परिपूर्ण खजाना है इस बातकी जागृति वेदके सूक्तोंमें स्थानस्थानपर है। जगतको देखते हुए अथवा किसी पदार्थका विचार या वर्णन करते हुए परमेश्वरके सद्भावकी

जागृति मनमें रहना चाहिए, यह ही वैदिक धर्मका विशेष ध्येय है। और इसीकारण प्रायः प्रत्येक देवताके मंत्रोंमें दूसरे पदार्थोंके वर्णन के साथ साथ परमात्माका वर्णन किया गया है। इस प्रकार विचार करनेसे पता लग जायगा कि, यहांका परमात्माका वर्णन वैदिक परिपाठीके अनुकूलहि है।

इस अष्टम मंत्रमें कहा है कि 'पोषक, बलिष्ठ और तेजस्वी परमात्मा की प्रशंसा करना चाहिए, उसी को नमन करना चाहिए तथा उसी का नाम लेना उचित है।' अर्थात् परमेश्वरका स्तवन, नमन और नामस्मरण करना योग्य है। इसप्रकार किसी अन्य की उपासना नहीं करना चाहिए।

इस मंत्रके पूर्व मंत्रोंमें भी किसी किसी स्थानपर परमात्माका भाव मुख्यतासे तथा कई स्थानोंपर गौण रीतीसे पाठक देख सकते हैं। तथापि उनमें वैद्यका वर्णन स्पष्टरूपसे होनेके कारण वह ही भाव वहां बताया है। परमात्माके विषयमें अलंकाररूपसे पूर्वोक्त वर्णन भी हो सकता है; इसका विचार पाठक स्वतंत्रतापूर्वक स्वयं कर सकते हैं। यहां केवल दिग्दर्शन मात्र किया है।

मंत्र ९–१०

परमेश्वरकी शक्ति उससे पृथक् नहीं होती।

'परमात्मा सर्वव्यापक है, उसके हस्तपादादि अवयय सर्वत्र हैं और पूर्ण बलवान हैं। वह शूर और सबका सच्चा भरणपोषण करनेवाला है। अपने तेजसे वह ही एक तेजस्वी होता है। सूर्यचंद्रादि अन्य सब देव उसीके तेजसे तेजस्वी हो रहे हैं। इस विशाल जगतका वह ही एक सच्चा ईश्वर है। और इसकी शक्ति सदा उसीके पास जैसीकी वैसी ही रहती है। कोई भी उससे अधिक शक्तिमान नहीं है, कि जो परमात्माकी शक्तिको उससे पृथक् कर सकता है।' यह नवम मंत्रका आशय है।

'परमात्मा समर्थ होनेके कारण दुष्टनिवारक शक्तियोंसे युक्त है, वह सर्वत्र व्याप्त है और सबपर दया करता है। उससे अधिक शक्तिशाली कोई भी नहीं है।' यह दशम मंत्रका भाव है।

इन दोनों मंत्रोंमें 'पुरुरूप और विश्वरूप' ये दो शब्द संदेह उत्पन्न करनेवाले हैं। 'सर्व-रूप' ऐसा इनका भाव प्रतीत हो सकता है। परंतु इसका अर्थ निम्नप्रकार है—

'पुरुषु बहुषु रूप्यते, विश्वस्मिन् सर्वस्मिन् जगति रूप्यते।' सब पदार्थोंमें दिखाई देता है। तथा सब जगतमें सर्वत्र दिखाई देता है। यह इन शब्दोंका अर्थ है। इसी लिये सब कोशोंमें इनका सर्वव्यापक (Omnipresent) ऐसा अर्थ दिया है, सबका रूप (All forms) ऐसा नहीं दिया है। क्यों कि ऐसा इन शब्दोंका आशय ही नहीं है। परमात्माका रूप तथा आकार न होनेके कारण वह 'अरूप और निराकार' है। परंतु वह सब विश्वमें दिखाई देता है इसलिये उसीको 'पुरुरूप तथा विश्वरूप' कहते हैं।

मंत्र ११

हृदयस्थानीय ईश्वर की उपासना।

इस ग्यारहवें मंत्रमें हृदयनिवासी परमात्माकी उपासना कही है। 'हृदयस्थानीय परमात्माको धूंडकर जानो' यह इस मंत्रके पूर्वार्धका आशय है। जिसप्रकार शिकारी लोक जानवरोंको धूंडते हैं, यहां नहीं वहां नहीं ऐसा कहते कहते जहां जानवर होता है वहां पहुंचते हैं; उसीप्रकार मुमुक्षु लोक पृथ्वी वह नहीं, सूर्य वह नहीं ऐसा कहते कहते, जहां वह रहता है वहां हृदयकंधरामें उस हृदयनिवासी परमात्माको धूंडते हैं। इस मंत्रमें उपासनाका प्रकार कहा है। इस दृष्टिसे यह मंत्र बडा महत्वपूर्ण है।

परमात्माकी उपासना और भक्तिसे शरीरका आरोग्य और आत्माकी शांति प्राप्त होती है। इसीलिये विश्वासु भक्तजन तेजस्वी, नीरोग और शांत होते हैं, और दीर्घायु भी होते हैं। अर्थात् परमात्मोपासना स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी बडी लाभदायक है। इसलिये हरएक धार्मिक मनुष्यको उचित है कि वह परमात्माकी उपासना करे और अभ्युदय तथा निःश्रेयस प्राप्त करके श्रेष्ठ बने। ईश्वरप्रार्थनासे रोगोंकी निवृत्ति भी होती है।

मंत्र १२-१३

पितापुत्रका संबंध।

'जिस प्रकार पुत्र अपने पिताको देख कर आनंदित होता है उसीप्रकार परमात्माका सर्वत्र अनुभव करके भक्त आनंदित होता है।' यह इस १२ वे मंत्रके पूर्वार्धका भाव है। परमेश्वर का और मनुष्योंका संबंध पितापुत्र का है। वैद्य और रोगीका भी संबंध इसीप्रकार प्रेमपूर्ण होना चाहिए। न की चूहाबिल्ली का संबंध रोगी और वैद्यमें होना चाहिए।

'शुद्ध और शांतिकारक ही औषध देना चाहिए' यह आशय १३ वे मंत्रमें है। इन दो मंत्रोंके अन्य भाव स्पष्ट हैं, इसलिये उनके विषयमें यहां अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं।

मंत्र १४-१५

दुर्मति और दण्ड

जहां दुर्मति होगी वहां परमात्मा हथियार चालता रहेगा। यदि परमेश्वरके दण्डसे बचना है, तो दुर्मतिको दूर करना उचित है। यह आशय १४ वे मंत्रके पूर्वार्धका है।

'जिस प्रकार परमेश्वर क्रोधित न होगा और हमारा नाश न करेगा उस प्रकारका योग्य वर्तन हम सबका होना चाहिए।' यह आशय १५ वे मंत्रके पूर्वार्धका है।

दुर्मति छोडकर सुमति धारण करनेसे न परमेश्वर क्रोधयुक्त होगा तथा न वह दण्ड देगा; प्रत्युत परमेश्वर संतुष्ट होगा और सबको आनंद देगा। इसलिये सबको सुमति धारण करना चाहिए। सुमति अर्थात् उत्तम बुद्धि धारण करनेसे मनुष्य सदाचारी बनता है और सदाचारही सब उन्नतिका आधार है अर्थात् सुमतिसे सब उन्नति प्राप्त होती है। इसलिये दुर्मतिको छोडकर सुमतिको धारण करना चाहिए।

इन दो मंत्रोंके अन्य भाव स्पष्ट हैं। इन सब मंत्रोंका विचार आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दृष्टिसे करके पाठक बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं। आशा है कि पाठक मंत्रोंके प्रत्येक शब्दके अंदर गूढ विचार ढूंडनेका यत्न करेंगे।

रुद्रसूक्तोंमें कई विद्याओंका मूल है। इन तीनों सूक्तों में वैद्यविद्याका वर्णन है। रोगीके कर्तव्य, वैद्यके कर्तव्य, औषधियोंके प्रकार, विविधचिकित्साओंके प्रकार, आरोग्यका मानसिक शांत अवस्थामें स्थान, सुमतिका महत्व, आदि अनेक वैद्यकके बातोंका विचार इन सूक्तोंद्वारा प्रकाशित हुआ है। विचार करनेसे कई अधिक भावोंका पता लगना भी संभव है।

जितना जितना विचार अधिक होगा, उतनी उतनी वैदिक मंत्रोंकी गहराई प्रतीत होती है, और आश्चर्य प्रतीत होता है, कि थोडेसे शब्दों में इतना अर्थ कैसा रखा गया है। जो बातें आधुनिक ग्रंथोंमें सेंकडो पृष्ठोंमें लिखीं होतीं हैं, उनका योग्य ज्ञान मंत्रके थोडेसे भागमें दिया होता है। यह वेदकी अपूर्व अलौकिकता है। जो देख सकेंगे वेही अनुभव कर सकते हैं। इसलिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे मंत्रोकी शैलीकी अनुसार ही मंत्रोंका विचार करें और बोध लेवें, जिससे वैदिक दृष्टिसे विचार करनेका अभ्यास हो जायगा। और कुछ अभ्यास के पश्चात् सब कठिनता हट जायगी।

(४) रुद्र सूक्त

(ऋ० ७।४६। ऋषिः—वसिष्ठः। देवता—रुद्रः)

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ॥ अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥ १ ॥

स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ॥ अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्च- रानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥ २ ॥

अर्थ—(स्थिर-धन्वने) दृढ धनुष्य धारण करनेवाले (क्षिप्रेषवे) शीघ्र बाण चलानेवाले, (सहमानाय) शत्रुके बलको सहन करनेवाले परंतु (अ-साळ्हाय) जिसके सामने शत्रु ठहर नहीं सकता, ऐसे तथा (तिग्मायुधाय) तीक्ष्ण आयुध धारण करनेवाले (वेधसे) शूर (स्व-धाव्ने) स्वतंत्र (देवाय) दिव्य (रुद्राय) दुःखनिवारक-देवताके लिये (इमा गिरः) ये वचन (भरत) रखीए। वह (नः) हम सबका भाषण (शृणोतु) सुने ॥

भावार्थ—शूर को उचित है कि वह दृढ धनुष्य धारण करे, उत्तम बाण उत्तम रीतीसे चलावे, अपने सब आयुध तीक्ष्ण रखे, शत्रूके हमलेको सहन करे, परंतु शत्रुपर ऐसा हमला चढावे कि वे उसको सहन न कर सके, अपनी धारण शक्तीपर खडा रहे, तथा सदा पराक्रम करता रहे। इस प्रकारके शूरकी प्रशंसा करना योग्य है। रुद्र इस प्रकारका प्रशंसनीय महावीर है ॥

अर्थ—(हि) क्यों कि (क्षम्यस्य) पृथिवी में और (दिव्यस्य) आकाश में (जन्मनः) जन्म लेनेवाले प्राणिमात्रके (क्षयेण) निवासकारक (साम्राज्येन) साम्राज्यसे (सः) वह शूर (चेतति) प्रकाशित होता है। (रुद्र) दुःखनिवारक शूर (अवन्तीः) अपनी रक्षा करनेवाली

या ते द्विद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति
परि सा वृणक्तु नः ॥ सहस्रं ते स्वपिवात
भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥ ३ ॥

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ
हीळितस्य ॥ आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे
यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४ ॥

प्रजाओंका (अवन्) संरक्षण करता हुआ तू (नः) हमसबके (दुरः) घरोंमें (उपचर)उपचार करो और (नः जासु) इम सबकी प्रजाओंमें (अन्-अमीवः) रोग दूर करनेवाला (भव) होओ ॥

भावार्थ—जिसमें सब प्राणिमात्रका उत्तम संरक्षण होता है उसी साम्राज्य के साथ शूर प्रकाशित होते हैं । जो अपनी रक्षा के लिये तत्पर होता है, उसीका संरक्षण किया जाता है । प्रत्येक घरमें ऐसा प्रबंध होना चाहिए कि जिससे सब नीरोग हो सकें ॥

अर्थ—(दिवः—परि) अंतरिक्षसे (अवसृष्टा) प्रेरित कीहुई (या) जो (ते दिद्युत्) तेरी प्रकाशमय विद्युत् (क्ष्मया) भूमीके साथ (चरति) संचार करती है (सा) वह (नः) हम सबको (परि-वृणक्तु) अलग रखे । हे (स्वपिवात) उत्तम विद्वान् ! (ते) तेरी (सहस्रं भेषजा) हजारों औषधियां हैं । जिनसे (नः) हम सबके (तोकेषु तनयेषु) बालबच्चोंमें (मा रीरिषः) बिघाड न कर ॥

भावार्थ—विद्युत्पात के कारण किसीका नाश न होवे । तथा औषधोंके कारण किसीको कष्ट न पहुंचे ॥

अर्थ—हे (रुद्र) दुःखनिवर्तक ! (नः मा वधीः) हम सबका नाश न कर । (मा परा दाः) हम सबका त्याग न कर । (ते हीळितस्य) तेरे क्रोधके (प्रसितौ) मार्गमें (मा भूम) हम सब न रहें । (जीव-शंसे) जीवोंको प्रशंसा करने योग्य (बर्हिषि) यज्ञ अर्थात् सत्कर्ममें (नः आ

भज) हम सबको भागी करो। (यूयं) आप सब (स्वस्तिभिः) उत्तम आचरणोंद्वारा (नः) हम सबको (सदा) हमेशा (पात) सुरक्षित करो ॥

भावार्थ—कोई किसीका नाश न करे। किसीको कष्ट न दे। क्रोधादि दुष्ट भावसे कोई प्रेरित न होवे। प्रशंसनीय सत्कर्ममें सब भाग लेते रहें और सदाचारसे एक दूसरेको सहायता करते हुए एक दूसरेका संरक्षण किया करें ॥

४ रुद्र सूक्त

(ऋ. ७।४६ रुद्र सूक्तकी विशेष व्याख्या)

'रुद्र' शब्दका मुख्य अर्थ 'दुःख-निवारक' है। शूर पुरुष अपने शौर्य-वीर्यसे जनताका दुःख हरण करते हैं, तथा वैद्य अपने पूर्वोक्त उपचारों-द्वारा जनताका कष्ट हटाते हैं। इस कारण इन दोनोंकी गणना रुद्रसूक्तों में हो गई है। क्यों कि इन दोनों शूर और वैद्य के अंदर 'दूसरोंके कष्ट दूर करनेका भाव' समानहि है। वैदिक सूक्तों में गुणकी दृष्टिसे एकता देखी जाती है। दुःखनिवारक गुण शूर और वैद्यमें समान होने के कारण दोनों में रुद्रत्व है, अर्थात् दोनों हि रुद्रसूक्तमें वर्णित हुए हैं। इनमें दुःखनिवारकत्व हि रुद्रत्व है। 'रुद्रत्व' अर्थात् दुःखनिवारक–भाव–रूपता शूरोंमें भी है और वैद्योंमें भी है। यह ही 'दुःखनिवारक—भावरूप' रुद्र देवता इस सूक्तमें वर्णन की है, और बडे चातुर्यसे शूरोंके राष्ट्रीय साम्राज्यका तथा वैद्योंके वानस्पत्य साम्राज्यका उत्तम वर्णन किया है।—

मंत्र १

प्रशंसनीय महावीर।

इस प्रथम मंत्रमें प्रशंसनीय महावीर शूर पुरुष के गुणोंका वर्णन किया है। देखीए—

(१) **स्थिरधन्वा**—'धनु' शब्दका अर्थ विरोधीके निवारणका साधन इतना ही लाक्षणिक रीतीसे होता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण 'रुद्र देवताका परिचय' नामक ग्रंथमें किया है। 'धन्' धातुका अर्थ 'शब्द करना, फल धारण करना' ऐसा दो प्रकारका है । तथा 'धन्व्' धातुका अर्थ 'गति अथवा हलचल' है । इनसे 'धनु' शब्द बनता है । 'शत्रुनिवारक शस्त्रास्त्र' इतना ही यहां इसका भावार्थ है। शूर के धनुष्यबाण आदि शस्त्र हैं जिनके साथ शत्रु सैन्यपर हमला किया जाता है, तथा वैद्यके औषधियां हि शस्त्र हैं कि जिनसे रोगोंपर चढाई की जाती है इन दोनोंका 'धन्' धातुके साथ कितना घनिष्ट संबंध है, इस बातका पता लिम्न कोष्टक से लग सकता है—

धन्

(संपत्ति)	धनं	(wealth)	(property)	धनं	(गुणधर्म)
(अस्त्र)	धनुः	(शस्त्रं)	(वनस्पतिः)	धान्यं	(फल)
”	धन्वं	(arms)	(soil)	धन्वन्	(भूमी)
(शूर)	धन्विन्	(an archer)		धन्वंतरिः	(वैद्य)

अर्थात् शूर और वैद्य का दूर की दृष्टिसे एकहि गोत्र है। इस कारण उन दोनों की 'रुद्र' में एक रूपता हो गई है ऐसा प्रतीत होता है। धन युद्ध से प्राप्त होता है। युद्ध शस्त्रास्त्रोंसे किया जाता है और शस्त्रोंको शूर पुरुष बरतते हैं; यह शूरके प्रकरण की संगति है । तथा रोगों को हटाने के लिये विशेष गुणधर्म स्थापन करना चाहिए औषधिवनस्पतियोंमें विशेष गुणधर्म प्राप्त होते हैं, वनस्पतियां भूमीमें उत्पन्न होतीं हैं और जिनको वैद्य बरतते हैं । अस्तु इस प्रकार धनु अथवा धन्वका दोनों ओर संबंध देखा जा सकता है।

'स्थिर-धन्वा'—अर्थात् जिसके शस्त्रास्त्र दृढ, मजबूत होते हैं

जिसके शस्त्रास्त्रों में विलक्षण स्थिरता होती है, जिसके शस्त्रास्त्र कमजोर नहीं होते, उसको स्थिर धन्वा कहते हैं।

(२) क्षिप्रेषुः— (क्षिप्र—इषुः) शीघ्रतासे बाण चलानेवाला, अपने शस्त्रास्त्रोंसे शत्रूपर हमला चढानेमें अत्यंत प्रवीण।

(३) तिग्मायुध—(तिग्म-आयुध) तीक्ष्ण शस्त्रोंको धारण करनेवाला, अपने सब शस्त्रास्त्र सदा तीखे रखनेवाला, जो अपने शस्त्रास्त्रोंकी धार कभी खराब नहीं करता, परंतु सदा अपने शस्त्र ठीक हि रखता है।

(४) वेधस्—'विध्' धातुसे यह शब्द बनता है। 'विध्' धातुका अर्थ To pierce, cut चुभाना, छेदना, to honour सन्मान करना; to rule, govern, administer नियमोंसे रखना, राज्य करना, इन्तजाम करना।

'वेधिन्'— छेद करनेवाला, चुभाने वाला, Hitting a target निशाना मारने अथवा चांदमारी के चिन्हका वेध करनेवाला।

'वि-धा' धातुसे भी 'वेधस्' बनता है। इसका अर्थ—Creator बनानेवाला; accomplisher परिपूर्णता करनेवाला; commander आज्ञा देने, और आधिपत्य करनेवाला होता है।

शस्त्रास्त्रोंद्वारा शत्रूके शरीरोंका छेदन करनेवाला अथवा सबके ऊपर हुकुमत करनेवाला ये भाव इस शब्दमें हैं। इन चार शब्दोंसे विशेषतया वीरोंके शस्त्रास्त्रों की सिद्धता अथवा तैय्यारी का भाव बताया है।

(५) सहमान—(सह-मान) 'सहः' शब्दका अर्थ बल, शक्ति होता है। बलवान शक्तिशाली ऐसा इस शब्दमें भाव है। जो शत्रुके हमलेको सहन करता है, अर्थात् शत्रुके हमले से डरता नहीं, अपने स्थानसे पीछे नहीं हटता, परंतु अपने स्थानपर स्थिर रहकर ऐसा युद्ध करता है कि शत्रुको वापस जाना पडता है, उस वीर को 'सहमान' कहते हैं। Not to be overcome, invincible.

(६) असाळ्ह—(अ-षाढ, अ-साळ्ह) Irresistible. अनिवा-

रणीय, अजिंक्य, जिसका कभी पराजय नहीं हो सकता । सदा विजयी ।

(७) स्वधाव्ने—(स्व-धा-वान्) अपनी धारणाशक्ति से युक्त । (स्व) अपनी (धा) धारणाशक्ति, बुद्धि, बलशक्ति से (वान्) युक्त । जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक बलके लिये दूसरेकी अपेक्षा नहीं करता । जो इतना बल धारण करता है कि जिससे वह किसी दूसरेकी अपेक्षाके विना अपनीहि शक्तिसे अपना कार्य निभा सकता है ।

'स्व-धा' शब्द 'पितरों' के सूक्तोंमें वारंवार आता है । अपने बलसे रहना और दूसरों के आश्रयकी अपेक्षा न करना, यह भाव इस शब्दसे व्यक्त होता है । इस शब्द के इस अर्थसे 'पितृ' शब्दमें 'संरक्षक' भाव व्यक्त हो सकता है । पाठक पितृसूक्तोंका विचार करने के समय इस अर्थका ख्याल रखें ।

युरोपीयन पंडितोंनें 'स्व-धा-वान्' शब्दकी बडी खोज की है । म. मूर साहब इसका (The self-dependent) स्वावलंबन करनेवाला, ऐसा अर्थ करते हैं । गुरुवर्य रॉथ साहब (independent, whose glory is inherent) स्वाधीन, स्वतंत्र, जिसकी स्वभावसिद्ध शोभा होती है, जिसकी महानता बनावटी नहीं होती ऐसा अर्थ करते हैं । इस अर्थके विषयमें निम्न मंत्र देखने योग्य हैः—

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो
यत्करिष्यन् ॥ जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता
न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥

ऋ. ७।२०।१

जो (उग्र) शूर और (स्व-धा-वान्) स्वतंत्र अथवा स्वाधीन होता है वह (वीर्याय) पराक्रम के लिये (जज्ञे) प्रसिद्ध होता है । वह (नर्यः) मनुष्योंके लिये हिंतकारक बनकर (यत् करिष्यन्) जो पुरुषार्थ करना चाहता है (अपः) वह व्यापक कर्म (चक्रिः) कर छोडता है । वह (युवा) तरुण (अवोभिः) संरक्षक शक्तियों के साथ

(नृ-सदनं) मनुष्योंके घरों में (जग्मिः) जानेवाला (इंद्रः) स्वामी, प्रभु राजा (नः) हमसबका (चित्) निश्चय से (महः अंहसः) बडे पापों से (त्राता) रक्षण करता है।

इस मंत्रमें 'स्वधावान्' शब्दका भाव उत्तम रीतीसे खुल जाता है। जो इस शब्दका अन्नयुक्त ऐसा ही अर्थ करते हैं, उनके अर्थसे इस शब्दका स्वाभाविक गंभीर अर्थ प्रकाशित नहीं होता। स्वतंत्रताके विचारों से युक्त होना, शौर्य वीर्य आदि प्रभाव के लिये अत्यंत आवश्यक है। परतंत्रताके कारण पराक्रम नहीं हो सकता। स्वतंत्रता ही सब पराक्रमों की जननी है। आत्मिक स्वातंत्र्य, बौद्धिक स्वाधीनता, मानसिक विचारों की स्वतंत्रता तथा शारीरिक बंधनोंका अभाव, सामाजिक और राष्ट्रीय स्वाधीनता होनेसेहि मनुष्य अपनी उन्नति प्राप्त कर सकता है। अन्यथा अभ्युदय प्राप्त होना असंभव है।

(८) देव—मर्दानी खेल खेलनेवाला, विजयप्राप्तीकी इच्छा करनेवाला, व्यवहारदक्ष, तेजस्वी, प्रशंसनीय, आनंदवृत्तिसे कर्म करनेवाला, आत्मसंमान रखनेवाला, हलचल करनेवाला, दाता, उदार, आरोग्यसंपन्न, ज्ञानी, विचारी, पालनकर्ता आनंददाता, मननशील, स्वातंत्र्यप्रिय, कारीगर, लेखक, आदि इस शब्दसे व्यक्त होनेवाले भाव "मानवी आयुष्य" नामक पुस्तक में देखीए। वहां 'देव' शब्दका विशेष स्पष्टीकरण किया है।

(९) रुद्र—(रुत्-द्र) दुःखका नाश करनेवाला। इन शब्दोंद्वारा 'महा-वीर' अर्थात् बडे शूरका वर्णन इस मंत्रनें किया है। वीर पुरुषके अंदर जो जो गुण अवश्य चाहिए उनका संग्रह इस मंत्रने किया है। पाठक उन शब्दोंका विशेष मनन करके मंत्रके गूढ आशयको समझलें, और इन गुणोंका अपने अंदर धारण करके 'महा-वीर' बननेका यत्न करें।

यह मंत्र स्पष्टता से शूर का वर्णन करता है। आलंकारिक दृष्टिसे वैद्य का भाव जाना जा सकता है, स्पष्ट रीतीसे नहीं। 'रुद्रदेवता का परिचय' नामक ग्रंथमें रुद्र से शूरका बोध होता है, ऐसा बताकर शूरवर्ग के कई नाम वहां दिये हैं। आशा है कि पाठक उस प्रकरण के साथ इस मंत्रका पाठ करें और सोचें।

मंत्र २

शूर और वैद्य ।

शूर प्राणिमात्रकी रक्षा करने वाले साम्राज्यके साथ प्रकाशमान होता है। अर्थात् महावीर पृथ्वी, अंतरिक्ष आदि स्थानमें रहनेवाले सब प्राणियोंके संरक्षण करने के लिये साम्राज्य स्थापन करने में विजय संपादन करता है। साम्राज्य स्थापने का उद्देश यह नहीं है कि, दूसरोंको परतंत्र बनाकर उनके सुखसाधनों को अपना सुख बढाने के लिये बर्ता जाय; परंतु साम्राज्य का यह ही उद्देश है कि सब प्राणियोंका 'क्षय' अर्थात् 'उत्तम रीतीसे निवास' हो सके। सबकी योग्य रक्षा होकर जहां सबको समान अधिकारसे विचरने के लिये योग्य अवसर प्राप्त होता है, वह ही सच्चा साम्राज्य है। इस स्थानपर 'क्षय' शब्दका विशेष अर्थ है। देखीए—

'क्षि' धातुसे 'क्षय' शब्द बनता है। इस 'क्षि' का अर्थ To rule, govern, be master of, नियमपूर्वक स्वाधीन रखना, शासन करना, राज्य करना, स्वामी होना; to abide, dwell, रहना, निवास करना, वसना; to remain रहना; to move जाना, हलचल करना; to go, approach पहुंचना, जाना, प्राप्त होना ॥ इन धात्वर्थों का वीर्य 'क्षय' शब्दमें हैं। इस कारण 'क्षय' शब्दका यौगिक धातुजन्य अर्थ (१) नियम के अनुकूल वर्ताव, (२) शासन, राज्यशासन, (३) स्वतंत्र राज्य, स्वतंत्रतायुक्त प्रभुत्व, (४) निवास, वस्ति, रहना सहना, (५) सब स्थानपर जाना, (६) हलचल। इसलिये 'क्षय' शब्दके अर्थ कोशोंमें निम्न प्रकार दिये हैं—A house, residence, abode घर, मकान, रहने का स्थान, स्वकीय अधिकारका स्थान, डेरा। family, race कुटुंब, जाती, स्वगोत्र।

'क्षयेण साम्राज्येन' का अर्थ उक्त शब्दार्थ के मनन करनेसे ज्ञात हो सकता है। साम्राज्य ऐसा होना चाहिए की जो साम्राज्य में रहनेवाले सब लोकों को अपने मकान के समान प्रतीत होवे, जिसमें एक कुटुंब में रहने के समान सब आनंद को प्राप्त कर सकें, जिसमें सर्व

व्यवहार नियमोंके अनुसार होता हो, जिसमें सबको स्वतंत्रतापूर्वक सर्वत्र रहने और विचरनेका पूर्ण अधिकार होवे । साम्राज्य का यह लक्षण है । वैदिक साम्राज्य की कल्पना कितनी उच्च है, इसका विचार इन शब्दों-द्वारा हो सकता है । इस प्रकारके उच्च साम्राज्य से शूर पुरुष विजयी, यशस्वी तथा तेजस्वी होते हैं । यह इस मंत्रके पूर्वार्धका आशय है ।

इस मंत्रका उत्तरार्ध वैद्यविषयक है । क्यों कि उसमें 'उप-चर' तथा 'अन्-अमीव' आदि शब्द आगये हैं । 'उपचर' शब्दका अर्थ— Cure, treatment चिकित्सा, इलाज, चंगा करना, औषध उपचार, रोग दूर करनेका उपाय करना; nursing रोगीकी सेवा, खिलाना; पुलाना, पुष्ट करना, दूध पिलाना, पथ्यके अनुसार खानपानका प्रबंध करना ।

'दुरः उपचर ।' अर्थात् 'घरों में आकर उपचार करो' । वैद्यको उचित है कि वह रोगीके घरमें जाकर उसकी अवस्थाका अच्छी प्रकार विचार करके वहांही रोग के निवारण के लिये औषधउपचार करे । यहां 'दुरः' शब्दका अर्थ 'द्वार, दरवाजा, घर, रहनेका स्थान' ऐसा है ।

'जासु' शब्द 'प्रजासु' के स्थानपर आगया है । 'प्र-जा' शब्दके 'प्र' को हटाने से इस शब्दकी सिद्धि होती है । प्रजाओं में 'अन्-अमीव' अर्थात् नीरोगता की स्थापना करना चाहिए । 'आम' अर्थात्—

आहारस्य रसः सारो यो न पक्वोऽग्निलाघवात् ॥
आमसंज्ञां स लभते महाव्याधिसमाश्रयः ॥

—सुश्रुत.

" अग्नि (अर्थात् पचनशक्ति) कम होनेके कारण भोजन का पचन ठीक नहीं होता, उस अपचित रसका नाम आम है । यह आम अनेक व्याधियोंको उत्पन्न करता है ।" यह सुश्रुतका कथन यहां विचार करने योग्य है । undigested food अन्नका अपचन; indigestion अपचन, अजीर्ण, unbaked न पका, योग्य रीतीसे न सेका हुआ अन्न; constipation कब्ज, बद्धकोष्ठ । ये 'आम' शब्दके भाव हैं । यह आम सब रोग उत्पन्न करता है । इसलिये 'अमीव' रोग का नाम होता

है। आम का पेट में संचय न होना 'अनू-अमीव' शब्दसे ध्वनित होता है। इस शब्दके द्वारा वेदनें इस अपूर्व सिद्धांत को सूचित किया है, कि जो लोक अपने पेट में 'आम' अर्थात् अपचन न होने देंगे, वे बीमार नहीं होंगे। तात्पर्य रोगोंसे अपनी रक्षा करना हरएक मनुष्यका कर्तव्य है।

इस प्रकार रोगोंसे अपनी रक्षा करनेवाली प्रजा का नाम 'अवन्तीः' (Protecting & defending) होता है। 'अवति रक्षति इति अवन्ती' जो अपना संरक्षण करती है उस प्रजाका नाम 'अवन्ती' होता है। स्वसंरक्षण करने के लिये समर्थ हरएक को बनना चाहिए। वैद्यभी उनही मनुष्योंको सहाय्य कर सकता है कि जो अपने आपके संरक्षणमें सदा दक्ष रहता है। इसलिये वेदनें कहा है कि 'अवन्तीः अवन्' अर्थात् जो अपना रक्षण करते हैं उनका संरक्षण करता हुआ सब लोकोंको नीरोग रखो। जो अनियम से रहते हैं उनकी सहायता कोईभी नहीं कर सकता। और अनियमयुक्त जिनका आचरण होता है वेहि रोगी होते हैं। इस उत्तरार्ध का मनन करनेसे अपने बचावके मार्गका बोध हो सकता है। अशा है कि सब लोक इस प्रकार अपना संरक्षण करके नीरोग, बलवान और दीर्घायु बनें॥

मंत्र ३

विद्युत और औषधी।

इस तृतीय मंत्रमें 'स्वपिवात' शब्द अपूर्व महत्व रखता है। श्री० सायणाचार्य इसका अर्थ 'जित-प्राण' अर्थात् प्राणों का नियमन करनेवाला योगी, ऐसा करते हैं। परंतु सायण भाष्यमें अन्यत्र इस शब्दका स्पष्ट अर्थ दिया नहीं। केवल एक स्थानमें उक्त अर्थ दिया है। निरुक्त १०।७ में निम्न अर्थ दिया है। "स्वाप्त-वचन" (whose words are very authoritative) जिनका वचन प्रामाणिक होता है। 'सु-आप्त-वचन' अर्थात् उत्तम श्रेष्ठ आप्त पुरुषका कहना, यह आशय 'स्वपि-वात'

का श्री० यास्क आचार्य देते हैं । पदपाठ के अंदर इसका पद 'सु-अ-पिवात' ऐसा दिया है । 'अपि-वत्' धातुका अर्थ 'ज्ञान प्राप्तिके लिये अध्ययन करना (learning to understand), अपने लिये उपयोग करना (appropriating to one's self), ऐसा होता है । यही धातु प्रयोजक अर्थ में (to teach to understand) समझने समझाने के लिये पढाना, इस अर्थका प्रकाश करता है । तात्पर्य 'स्वपिवात (सु-अपि-वात)' शब्द समझदार, सुननेवाला, दयालु, आदि भाव व्यक्त करता है । यह मत म. रॉथ साहबका है । इस गंभीर अर्थके लिये यह साहब महोदय धन्यवादके लिये योग्य हैं ।

श्री० दुर्गाचार्य इस 'स्वपिवात' शब्दका अर्थ 'अनतिक्रमणीयाज्ञः' अर्थात् जिसकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं हो सकता, ऐसा करते हैं । इस अर्थ के साथ श्री. यास्काचार्यका अर्थ विचार की दृष्टीसे सोचना योग्य है । श्री० दुर्गाचार्यजी का भाव भी उस में से टपकता है; क्यों कि आप्त पुरुषों का वचन अमान्य करने योग्य नहीं होता है ।

'अपि-वात्' का अर्थ 'उत्तम प्रेरणा करना' भी होता है । देखीए—

भद्रं नो अपि वातय मनः ॥

ऋ. १०।२०।१

'हम सबके मनोंको कल्याण की ओर प्रेरित करो ।' अर्थात् (awaken in us a good sense) हम सबके अंदर उत्तम ज्ञान जागृत करो । ज्ञान की जागृति करना 'अपि-वात्' का भाव है । 'सु-अपि-वात' का उत्तम ज्ञानी, बुद्धिमान, विद्वान ऐसा भी अर्थ होता है ।

हे (स्वपिवात) ज्ञानी पुरुष । हजारों औषधियां हैं । परंतु उनमें से ऐसे औषधियोंका उपयोग करो कि जिनके उपयोगसे बालबच्चों की प्रकृतिमें बिघाड न होवे । औषधोंके कारण प्रकृतिमें खराबी भी हो सकती है । औषधोंका दुरुपयोग, अतिसेवन, अकालसेवन आदि के कारण शरीर की खराबी हो सकती है । बालबच्चों के शरीर बहुत कोमल होनेसे उनके लिये सौम्य औषधउपचार होने उचित हैं । इत्यादि उपदेश इस मंत्रसे लेना उचित है ।

मंत्रके पूर्वार्ध में कहा है कि आकाशसे गिरनेवाली विद्युत् जमीन में संचार करती है । विद्युत् का गिरना आधिदैविक आपत्ति है । जिसके ऊपर विद्युत् गिरेगी वह तत्क्षण मर जाता है । इसलिये इस आपत्तिसे बचानेके लिये आधिदैविक शक्ति की प्रार्थना करना योग्य है । रोगोंके कष्ट वैद्य दूर कर सकता है, परंतु आधिदैविक आपत्तियोंको दूर करना वैद्यके आधीन नहीं है । उनसे आधिदैविक परमात्मशक्ति हि बचा सकती है । इस लिये आधिदैविक आपत्तियोंसे बचानेके लिये परमात्माकी प्रार्थना करना उचित है । परंतु जिनका प्रतीकार करना अपने पुरुषार्थके अंदर है, उस विघ्नके प्रतीकार के लिये पुरुषार्थ न करते हुए किसीकी प्रार्थनाही केवल करना उचित नहीं । ऐसी अवस्थामें 'स्व-धा-वान्' अर्थात् स्वावलंबन का आश्रय करना सर्वथा योग्य है; इस प्रकार इस मंत्रका विचार कीजिए ।

मंत्र ४

क्रोध के मार्गसे दूर रहो ।

इस मंत्र में 'जीव-शंस' शब्दका अर्थ (rule over the living) प्राणिमात्रको नियमोंके अंदर रखनेवाला, किंवा प्रणियोंका शासन करनेवाला है । यह भाव म. बोथ्लिंग तथा रॉथ साहेब बताते हैं । म. बेन्फे साहब कहते हैं कि 'मनुष्यों में प्रशंसित' ऐसा इसका आशय है । श्रीसायणाचार्य इसका भाव 'कामयितव्य' अर्थात् इच्छा करने योग्य, ऐसा बताते हैं । श्री० स्वा० दयानंद सरस्वतीजी इसका अर्थ 'जीवों से प्रशंसा करने योग्य' ऐसा करते हैं ।

इस मंत्रमें निम्न बातें कहीं हैं । (१) वध न करो, (२) संबंधीयोंसे अलग न करो, (३) क्रोधके मार्ग में न रहो, (४) प्रशंसनीय सत्कर्मका भागी बनो, (५) सदाचार से सब की रक्षा करो ।

किसीका वध करना, किसीको संबंधियोंसे अलग करना उचित नहीं । क्रोधके मार्ग में चलने से अनेक आपत्तियां हैं । इसका वर्णन पहिले आचुका है । इसलिये यहां व्यर्थ विस्तार करनेकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । आशा है कि पाठक इन मंत्रोंका विशेष विचार करके मंत्रके गूढ आशय को जानेंगे ॥

वैदिक सुभाषित।

(ऋग्वेदमें रुद्रदेवता पुस्तकसे)

१ वोचेम शं-तमम्।	अत्यंत शांतिकारक भाषण हम सब बोलेंगे।
२ तच्छंयोः सुम्नमीमहे। ...	शांति और दुःखनिवारक शक्तियुक्त सुख हम सब चाहते हैं।
३ यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्य-मिव रोचते।	जो सूर्य के समान वीर्यवान और पवित्र होता है वह ही सुवर्णके समान चमकता है।
४ माऽरातयो जुहुरन्त। ...	शत्रु हमारा नाश न करे।
५ जलाषमुग्रं भेषजम्। ...	केवल जलही बडा भारी औषध है।
६ आपो अमीव–चातनीः। ...	जल सब रोगोंको दूर करनेवाला है।
७ विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नना-तुरम्।	इस ग्रामके सब प्राणी नीरोग, और पुष्ट रहें।
८ यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे।	जिस प्रकार द्विपाद और चतुष्पाद प्राणियोंका कल्याण हो जाय (उस प्रकार हमसबको आचरण करना चाहिए)
९ आरे अस्मद्दैव्यं हेळः। ...	इंद्रियसंबंधि क्रोध हमारेसे दूर रहे।
१० रास्वा च नो अमृत मर्त-भोजनं।	हे अमर! हम सबको मानवी भोजन दो।
११ तोकाय तनयाय मृळ। ...	बालबच्चोंको सुखी रखो।
१२ सुमतिर्मृळयत्तमा।	सद्बुद्धि अत्यंत सुख देती है।
१३ आरे ते गोघ्नमुत पुरुषघ्नं। ...	आप में से गोघातकी और मनुष्य-घातकीको दूर करो।
१४ अधि च ब्रूहि देव।	हे देव! हमको उपदेश करो।

१५ मा नः सूर्यस्य संदृशो युयोथाः ।		सूर्यका प्रकाश हमसे पृथक् न होवे ।
१६ अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत ।		हमारे वीर शत्रुओंपर चढाई करें ।
१७ शतं हिमा अशीय ।	...	सौ वर्षकी आयु प्राप्त करें ।
१८ व्यस्मद्द्वेषः ।	...	हमसे द्वेषभाव दूर होवे ।
१९ वितरं व्यंहः ।... ...	...	हमसे पापविचार दूर होवे ।
२० व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ।		विविध प्रकारकी बीमारियां हमारेसे दूर रहें ।
२१ पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति ।		हम सबको पापके परे कुशलता पूर्वक पहुंचाओ ।
२२ विश्वा अभीती रपसो युयोधि ।		सब कष्टोंके साथ हमारे से युद्ध कराओ ।
२३ मा दुष्टुतीः ।	...	बुरेकी प्रशंसा न करो ।
२४ उन्नो वीराँ अर्पय । ...	...	हमारे वीरोंकी उन्नति करो ।
२५ मा रीरधन्मनायै । ...	...	घमंडके कारण किसीका नाश न होवे ।
२६ घृणीव छायां । ...	...	धूपसे तपा हुआ छायामें जाता है ।
२७ अरपा अशीय । ...	...	निर्दोष होकर उन्नति प्राप्त करें ।
२८ अपभर्ता रपसो दैव्यस्य । ...		इंद्रियोंके दोषोंको दूर करो ।
२९ नमस्य कल्मलीकिनं ।	...	कर्म करनेवालेको नमन करो ।
३० ईशानादस्य भुवनस्य भूरेः न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ।		इस जगतके ईश्वरकी शक्ति उससे कोई भी पृथक् नहीं कर सकता ।
३१ स्थिरेभिरंगैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।		जो सुंदर, सुदृढ, शूर और पोषक होता है वह वीर्ययुक्त तेजोंसे चमकता है ।
३२ अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं ।		योग्य होनेसे इस विशाल विश्व पर तू दया करता है ।
३३ न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ।		हे ईश्वर ! तेरेसे कोईभी अधिक बलवान नहीं है ।

३४ **स्तुहि श्रुतं गर्तसदं ।** ...	अपने हृदयमें रहनेवाले ईश्वरकी स्तुति करो ।
३५ **कुमारश्चित्पितरं वंदमानं प्रति ननाम ।**	वंदनीय पिताको पुत्र नमन करता है ।
३६ **भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे ।**	उत्तम पालक और दाताकी प्रशंसा करो ।
३७ **दुर्मतिर्मही गात् ।**	हमारेसे बडी दुर्मति दूर रहे ।
३८ **इह बोधि ।**	यहां ज्ञान प्राप्त करो ।
३९ **बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।**	युद्धमें वीर बनकर उत्साह युक्त भाषण करेंगे ।
४० **दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु ।**	सूर्य आपका दीर्घ आयु बनावे ।
४१ **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।**	स्थावर जंगम जगत्का आत्मा सूर्य है ।
४२ **साम्राज्येन चेतति ।**	साम्राज्यके साथ प्रकाशता है ।
४३ **अवन्नवन्तीः ।**	जो अपना रक्षण करते हैं उनका संरक्षण वह करता है ।
४४ **मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।**	तेरे क्रोधके मार्गमें हम न रहें ।
४५ **आ नो भज बर्हिषि जीव-शंसे ।**	जीवोंको प्रशंसाकरने योग्य सत्कर्ममें हमको भागी करो ।
४६ **यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।**	आप हमको उत्तम आचरणों द्वारा सुरक्षित करो ।
४७ **उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावान् ।**	जो शूर और स्वतंत्र होता है वह शौर्यकेलिये प्रसिद्ध होता है ।
४८ **चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन् ।**	मानवी हित करनेवाला शूर जो काम करना चाहता है कर छोडता है ।
४९ **जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता ।**	प्रगति करनेवाला तरुण मनुष्योंके घरोंका रक्षण अपनी शक्तियोंसे करता है ।

(रुद्र देवताके परिचय से)

१ अंतरिच्छन्ति तं जने। ...	मनुष्यके अंतःकरणमें उस ईश्वर को देखते हैं।
२ गृभ्णन्ति जिह्वया ससम्।...	जिह्वासे धान्यका स्वाद लेते हैं।
३ अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय	इनमें कोई बडा और छोटा नहीं है। ये भाई सब मिलकर अभ्युदय के लिये प्रयत्न करते हैं।
४ आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयं।	हम तेजस्वी संरक्षक शक्ति प्राप्त करते हैं।
५ त्वेषं रूपं नमसा निह्वयामहे।	तेजस्वी रूपकी संमानपूर्वक प्रशंसा करते हैं।
६ घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट्।	कर्मके पसीनेके साथ द्रव्य प्राप्त होता है।
७ उग्रौ चरतो वीर्याय। ...	जो उग्र शूर होते हैं वे पराक्रमके लिये प्रयत्न करते हैं।

सूक्त-सूची।

आर्यकुमार स्मृति



[illegible]

[illegible] ब्रह्मचर्याश्रम

[illegible]